यूहन्ना की पत्रियां

मसीही विश्वासियों के लिए **"पहला यूहन्ना, दूसरा यूहन्ना और तीसरा यूहन्ना"** नामक बाइबॅल-पुस्तकों का एक संक्षिप्त अध्ययन

YUHANNA KEE PATRIYAN

First Hindi Edition **: August-2009**

Translated into Hindi by	:	**J.P. Pandey**
Assisted by	:	**R.K. Khullar**

Originally published in English by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. 22602 (U.S.A.), with the title "Lessons in First, Second and Third JOHN for Growing Believers", edited by Scott and Tim Mcmanigle, and the same is based on the New Tribes Mission's method of chronologically teaching the scripture.

Copyright © The Fellowship Bible Church, Winchester, VA. (U.S.A.). All rights reserved.

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	7—20
दो	21—33
तीन	34—46
चार	47—58
पांच	59—68
छः	69—83
सात	84—96
आठ	99—106
नौ	109—116

यूहन्ना
की
पत्रियों
का
एक संक्षिप्त अध्ययन

पहला यूहन्ना

1

इस पत्री को यूहन्ना ने उन्हीं बातों पर जोर देने के लिए लिखा जिन्हें उसने तथा अन्य प्रेरितों ने प्रभु यीशु के स्वर्गारोहण के पश्चात् अपनी सेवकाई के प्रारम्भ से ही सिखाया था। इस पत्री के पहले अध्याय में ही यूहन्ना इस सच्चाई को सुस्पष्ट कर देता है कि यीशु नामक वह मनुष्य ही, जिससे वह भलीभांति परिचित था, स्वर्ग से अवतरित सच्चा मसीह था। अन्य प्रेरितों के साथ यूहन्ना ने भी तीन साल तक यीशु मसीह की बहुत समीपता में जीवन बिताया था। उसके साथ रोज–रोज जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने उसे बात–व्यवहार में बड़ी नजदीकी से देखा–सुना था। वे उसके साथ भोजन किए, नाव में यात्रा किए तथा विभिन्न परिस्थितियों में रहे। ध्यान रहे कि अन्य प्रेरितों की अपेक्षा यूहन्ना का प्रभु यीशु के साथ ज्यादा नजदीकी सम्बन्ध था। यूहन्ना ने ही "छाती की ओर झुककर" उससे बातचीत किया, उसके बारे में ही लिखा है कि उससे "यीशु प्रेम रखता" था और क्रूस पर बलि होते समय यूहन्ना को ही मसीह ने (अपनी माता) मरियम की देखरेख का दायित्व सौंपा था।

"उस जीवन के वचन के सम्बन्ध में जो आदि से था, जिसे हमने सुना, जिसे हमने अपनी आखों से देखा, वरन् जिसे ध्यानपूर्वक देखा और हमारे हाथों ने स्पर्श किया – वह जीवन प्रकट हुआ; हमने उसे देखा है और उसकी

साक्षी देते हैं, और तुम्हें उस अनन्त जीवन का समाचार सुनाते हैं जो पिता के साथ था और हम पर प्रकट हुआ" (प0 यूह0 1:1–2)। मान लीजिए, आपसे कोई यह पूछता है कि क्या आपका बड़ा भाई एक "वास्तविक" व्यक्ति है? आप क्या जवाब देंगे? संभवतः आप यह कहें कि आप अपने भाई के साथ जीवन भर रहे हैं, इसलिए आप जानते हैं कि वह एक वास्तविक व्यक्ति है। हम बचपन से ही साथ–साथ उठे–बैठे, खेले–कूदे, खाए–पिए, सोए–जागे व काम–काज किए हैं। वह सचमुच में एक वास्तविक व्यक्ति है। कुछ इसी प्रकार यूहन्ना ने भी जवाब दिया। उसने लगभग तीन साल तक यीशु के साथ दिन–रात जीवन व्यतीत किया था। इसलिए वह भली–भांति जानता था कि मरियम का वह बालक परमेश्वर का अनन्त पुत्र है और पिता परमेश्वर से ही आया है। यहां यूहन्ना ने प्रभु यीशु को "जीवन का वचन" कहा है (यूह0 1:1 एवं 14)। परमेश्वर हम से जो कुछ कहना, बताना या संचारित करना चाहता है, उसी के द्वारा प्रकट करता है; अतएव उसे "वचन" (इब्रा0 1:2) कहा गया है।

पिता परमेश्वर ने जब मनुष्य से कुछ कहना चाहा तो उसने सिर्फ अपने लिखित वचन (पवित्र बाइबॅल) के द्वारा ही नहीं, बल्कि उसने "पुत्र" के द्वारा भी बात किया। यीशु हमारे लिए परमेश्वर की वाणी एवं परमेश्वर का पत्र है (यूह0 14:7–11)। प्रभु यीशु ही जीवन का वचन है, क्योंकि वह शाश्वत् (अनन्त) है और उसके द्वारा तथा उसके वचन के द्वारा ही हम जीवन पाते हैं – अनन्त जीवन (यूह0 11:25–26)। अतः यूहन्ना ने प्रभु के विश्वासियों को पूर्णतः

आश्वस्त किया कि उन्हें इस सच्चाई के प्रति सुनिश्चित रहना है कि उन्हें (मसीह यीशु के द्वारा) अनन्त जीवन मिल चुका है (प0यूह0 5:13)। यद्यपि हमने प्रभु यीशु को देखा, सुना या स्पर्श नहीं किया है तथापि हमारे पास उन प्रेरितों द्वारा लिखित अभिलेख (वृतान्त) उपलब्ध है जिन्होंने वास्तव में उसे देखा, सुना व स्पर्श किया था। जब प्रेरितों के जरिए परमेश्वर द्वारा हमें प्रदत्त पवित्र वचन पर हम विश्वास करते हैं तो उसका अनन्त जीवन पाते हैं।

पहला यूहन्ना के पहले पद पर ध्यान दें : "...जो आदि से था, जिसे हमने सुना..."। यूहन्ना तीन वर्ष तक यीशु के साथ रहा और चला–फिरा; अर्थात् उसे सुना था। "...जिसे हमने अपनी आंखों से देखा..."। यूहन्ना ने वास्तव में उसे देखा था। "...वरन् जिसे ध्यानपूर्वक देखा..."। किसी को देखने और उसे **ध्यानपूर्वक** देखने में अन्तर होता है। "...और हमारे हाथों ने स्पर्श किया"। यूहन्ना नामक इस शिष्य ने प्रभु यीशु के साथ बात किया था, उसके साथ चला–फिरा था और उसके साथ रहा था। यहां मसीह के साथ यूहन्ना की सच्ची संगति–सहभागिता का चित्रण है। अर्थात् प्रभु यीशु मसीह के जीवन के साथ हमारे जीवन की संगति–सहभागिता। यहां मसीह के बारे में सिर्फ जानकारी रखने की बात नहीं, बल्कि उसे वास्तव में जानने–पहचानने एवं उसमें बने रहने की बात की जा रही है (यूह0 20:29; प0पत0 1:8; दू0कुरि0 5:16)।

"वह जीवन प्रकट हुआ; हमने उसे देखा है और उसकी साक्षी देते हैं, और तुम्हें उस अनन्त जीवन का

समाचार सुनाते हैं जो पिता के साथ था और हम पर प्रकट हुआ" (प0यूह0 1:2)। पुनः यूहन्ना ने प्रभु यीशु को जानने–पहचानने रूपी तथ्य पर जोर दिया है। इसके साथ ही साथ यह भी प्रतीत होता है कि अन्य चेलों की अपेक्षा यूहन्ना की मसीह यीशु के साथ ज्यादा करीबी संगति रही। "अंतिम भोज" के समय यूहन्ना के द्वारा ही यीशु की "छाती की ओर झुककर" उससे बात करने का, और प्रभु यीशु द्वारा उससे प्रेम करने का उल्लेख है (यूह0 21:20)। प्रभु यीशु ने यूहन्ना को ही मरियम की देखरेख करने की जिम्मेदारी सौंपी थी (यूह0 19:26–27)। अतः यूहन्ना अपनी इस पहली पत्री में इस सच्चाई के महत्व पर बल देता है कि वह वास्तव में मसीह यीशु को जानता है और उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा यह है कि प्रभु यीशु के साथ ऐसी ही संगति–सहभागिता का सब लोग अनुभव करें। यूहन्ना के शब्दों पर पुनः ध्यान दें : "...जीवन प्रकट हुआ, हमने उसे देखा है और उसकी साक्षी देते हैं"।

"जिसे हमने देखा और सुना, उसी का समाचार हम तुम्हें भी सुनाते हैं, कि तुम भी हमारे साथ सहभागिता रखो; वास्तव में हमारी यह सहभागिता पिता के और उसके पुत्र यीशु मसीह के साथ है। और ये बातें हम इसलिए लिखते हैं कि हमारा आनन्द पूरा हो जाए" (प0यूह0 1:3–4)। पिता परमेश्वर एवं पुत्र परमेश्वर के साथ प्रेरितों की अद्‌भुत संगति थी, और वे दूसरों को भी मसीह का संदेश देना चाहते थे, ताकि अन्य लोग भी उसका संदेश पाकर उस पर विश्वास करें। इसके परिणामस्वरूप दूसरे लोगों को भी पिता परमेश्वर एवं पुत्र परमेश्वर की अद्‌भुत

संगति–सहभागिता प्राप्त होनी थी (यूह0 17:21)। यूहन्ना के लिखने का उद्देश्य यह है कि हमारी एक दूसरे के साथ संगति बनी रहे। बहरहाल, यूहन्ना यह कहता है कि इससे भी बढ़कर सच्चाई यह है कि "वास्तव में हमारी यह सहभागिता पिता के और उसके पुत्र यीशु मसीह के साथ है" – यह संगति एवं सहभागिता मसीह में केन्द्रित है।

एक समय सभी विश्वासी अंधकार में थे और सच्चे एवं जीवित परमेश्वर तथा उसके पुत्र से अलग (दूर) थे। परन्तु परमेश्वर यह चाहता है कि हम उसके साथ संगति का आनन्द ले सकें। जब हमने मसीह की मृत्यु एवं पुनरुत्थान के संदेश को सुनकर उस पर विश्वास किया तब हम पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह के साथ सही सम्बन्ध में लाए गये। इतना ही नहीं, बल्कि हम प्रभु यीशु मसीह की कलीसिया रूपी परिवार के सदस्य हो गए अर्थात् वह कलीसिया जिसके सदस्य सारे संसार में, यहां तक कि स्वर्ग में भी हैं (यूह0 17:3; 21–23)। यहां चौथे पद में यूहन्ना के लिखने के उद्देश्य पर ध्यान दें – "ये बातें (पहले से तीसरे पद तक की बातें) हम इसलिए लिखते हैं कि हमारा आनन्द पूरा हो जाए"। प्रभु यीशु मसीह ने भी अनेक बार आनन्द के बारे में बात की – एक भरपूर, उमड़ता हुआ जीवन, परिपूर्ण जीवन (यूह0 15:11;16:22–24;17:3)। पौलुस प्रेरित ने फिलिप्पियों नामक पत्री एक कारागार (जेल) से लिखी थी, किन्तु उस पत्री का प्रमुख विषय **आनन्द** है। उस पत्री में **आनन्द** शब्द लगभग सोलह बार आया है। यहां यह भी स्मरण रखना है कि **आनन्द**, पवित्र आत्मा के फलों में से एक है, और

आनन्द की भरपूरी ख्रीष्त के सत्य–ज्ञान से ही प्राप्त होती है। हम जैसे–जैसे मसीह के ज्ञान और अनुग्रह में विकसित होते हैं, वैसे–वैसे हमारे जीवन में पवित्र आत्मा द्वारा ख्रीष्त–जीवन निर्मित किया जाता है और इसके परिणामस्वरूप आत्मा के फल (आनन्द) प्रकट होते हैं।

विश्वासीजन प्रभु यीशु की शिष्यता में जितना ही अधिक बढ़ता जाता है और उसके साथ उसकी संगति–सहभागिता जितनी ही अधिक गहरी होती जाती है, विश्वासी में ख्रीष्त का जीवन उतना ही अधिक पुनरुत्पादित (निर्मित) होता जाता है। नतीजतन विश्वासी में सच्चे आनन्द की भरपूरी बढ़ती जाती है। हमारे इर्द–गिर्द अनेक ऐसे लोग पाए जाते हैं जो या तो प्रभु यीशु मसीह को अपने उद्धारकर्ता के रूप में नहीं जानते या फिर उसकी संगति से परिचित नहीं, इसलिए सुसमाचार प्रचार और शिष्यता–सेवा की अत्यधिक आवश्यकता है (प्रेरि0 26:15–18; रोमि0 1:14–16; दू0तीमु0 2:10)।

"वह समाचार जो हमने उस से सुना है और तुमको सुनाते हैं, वह यह है, कि परमेश्वर ज्योति है और उसमें कुछ भी अन्धकार नहीं" (प0यूह0 1:5)। अब यूहन्ना ऐसे लोगों के कुछेक गुणों (विशेषताओं) का वर्णन करता है जो पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की संगति–सहभागिता में जीवन बिताते हैं। यूहन्ना का यह संदेश पवित्र आत्मा की प्रेरणा से लिखा गया है और सत्य है (दू0तीमु0 3:16)। अतएव हमें यह मानना है कि प्रभु यीशु मसीह ने भी यही सिखाया कि "परमेश्वर ज्योति है और उसमें कोई भी

अंधकार नहीं है"। इसका भावार्थ यह है कि परमेश्वर पूर्णरूपेण पवित्र है और उसके द्वारा किए गये समस्त कार्य पूर्णरूपेण सच्चे, धार्मिकतापूर्ण एवं न्यायपूर्ण होते हैं। यूहन्ना 3:19–20 के अनुसार, "दोष यह है कि, ज्योति जगत में आ चुकी है, परन्तु मनुष्यों ने ज्योति की अपेक्षा अंधकार को अधिक प्रिय जाना, क्योंकि उनके कार्य बुरे थे। क्योंकि प्रत्येक जो बुराई करता है, ज्योति से बैर रखता है, और ज्योति के पास नहीं आता कि कहीं उसके कार्य प्रकट न हो जाएं"। बुराई करने वाला प्रत्येक व्यक्ति सच्चे परमेश्वर को अपने जीवन में नहीं चाहता (उसका हस्तक्षेप नहीं चाहता) और ऐसा व्यक्ति परमेश्वर के समीप नहीं आता, ताकि कहीं ऐसा न हो कि उसके बुरे काम बेपर्द हो जाएं। "परन्तु वह जो सत्य पर चलता है ज्योति के पास आता है, जिससे यह प्रकट हो जाए कि उसके कार्य परमेश्वर की ओर से किए गए हैं" (यूह0 3:21)।

"यदि हम कहें कि उसके साथ हमारी सहभागिता है फिर भी अन्धकार में चलें, तो हम झूठ बोलते हैं और सत्य पर आचरण नहीं करते" (प0यूह0 1:6)। चूंकि "परमेश्वर ज्योति है," इसलिए वह पाप से संगति नहीं रखता और अंधकार (पापपूर्ण या शारीरिकता) में जीवन व्यतीत करने वालों के साथ संगति नहीं रख सकता। जब कोई विश्वासी शारीरिकता में जीवन व्यतीत करता है और परमेश्वर के समक्ष अपने पापीपन को मानने से इनकार करते हुए अपनी शारीरिक व इहलौकिक जीवन की अभिलाषाओं के अनुसार जीवन बिताता है तो ऐसा जन अंधकार में चलता है। जो लोग यह कहते हैं कि 'परमेश्वर के साथ उनकी संगति

है,' किन्तु वास्तव में उनकी सच्ची संगति परमेश्वर के साथ नहीं है; ऐसे लोग अंधकार में जीवन व्यतीत करते हैं। हम (विश्वासीजन) कब अंधकार में जीवन व्यतीत करते हैं? जब हम शारीरिकता (पुराने आदम स्वभाव) में जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार जब हम परमेश्वर की संगति में होने की बात करते हैं, किन्तु शारीरिकता का जीवन बिताते हैं "तो हम झूठ बोलते हैं और सत्य पर आचरण नहीं करते"। दूसरे शब्दों में, हम स्वयं को धोखा देते हैं – झूठा आचरण करते हैं।

"परन्तु यदि हम ज्योति में चलें जैसा वह स्वयं ज्योति में है, तो हमारी सहभागिता एक दूसरे से है, और उसके पुत्र यीशु का लहू हमें सब पाप से शुद्ध करता है" (प0यूह0 1:7)। ज्योति में चलने वाले विश्वासी कौन हैं और ज्योति में चलने का अर्थ क्या है? यदि हम मसीह में बने रह कर जीवन व्यतीत कर रहे हैं और हमारे जीवन में तथा हमारे जीवन के द्वारा मसीह अपना जीवन जी (निर्मित कर) रहा है, तब हम ज्योति में चल रहे हैं, जैसा कि परमेश्वर ज्योति में है। इसके फलस्वरूप एक दूसरे से हमारी सहभागिता बनी रहेगी। बहरहाल, यदि हम अंधकार (शारीरिकता) में चलते रहे हैं और दोष–भावना से दबे हैं, तो इस सातवें पद में इसका उपचार बताया गया है – "यीशु का लहू हमें सब पाप से शुद्ध करता है"।

पवित्रशास्त्र के पुराना नियम के लैव्यवस्था नामक पुस्तक के सत्रहवें अध्याय के ग्यारहवें पद के अनुसार, "शरीर का प्राण लहू में रहता है, और उसको मैंने तुम

लोगों को वेदी पर चढ़ाने के लिए दिया है कि तुम्हारे प्राणों के लिए प्रायश्चित किया जाय, क्योंकि प्राण के कारण लहू से ही प्रायश्चित होता है"। प्रभु परमेश्वर ने ही पाप के बदले दंड–मूल्य का पैमाना निर्धारित किया है – अर्थात् पाप की सजा मृत्यु और पाप के दंड–मूल्य के लिए लहू। इस प्रकार, हम जब कभी पाप करते हैं तो इसका दंड–मूल्य मसीह का लहू होता है जो हमें समस्त अधर्म, पाप व अपराध से शुद्ध करता है। इसमें हमारा पक्ष (कार्य) सिर्फ इस सच्चाई को मानना और (मसीह के) लहू द्वारा दिए गये दंड–मूल्य पर विश्वास–विश्राम करना है। जरा सोचें! हमारे बदले मसीह के लहू द्वारा चुकता किए गये दंड–मूल्य से परमेश्वर पूर्णरूपेण संतुष्ट है, लेकिन अक्सर हम संतुष्ट नहीं होते, क्योंकि हम इस सच्चाई को भूल जाते हैं। इसलिए पाप कर देने पर हम अपने पाप का स्वीकरण करते हैं, और दोष–भावना से ग्रसित होते हैं, इसलिए पुनः अपने पाप को मानते हैं और फिर अपराध–बोध में आ जाते हैं; और फिर पाप–स्वीकरण करते हैं और फिर दोष–भावना में होते हैं (इत्यादि)। कभी–कभी यह चक्र दिनों, हफ्तों, महीनों और वर्षों तक (जीवन भर) चलता रहता है।

बहरहाल, जब हम अपने पाप के बदले मसीह के लहू द्वारा चुकता किए गये दंड–मूल्य पर आशा–भरोसा रखते हुए विश्वास करते हैं तब इब्रानियों 10:19 के अनुसार, मसीह के लहू के आधार पर निर्भीकतापूर्वक परमेश्वर के अनुग्रह के सिंहासन के समीप जा सकते हैं। इसलिए यहां पहला यूहन्ना 1:7 में यह कहा गया है कि

"यदि हम ज्योति में चलें जैसा वह स्वयं ज्योति में है, तो हमारी सहभागिता एक दूसरे से है"। लेकिन यदि हम अंधकार में चलते रहे हैं तो हमें प्रभु की ओर देखने की जरूरत है, क्योंकि मसीह का लहू ही हमें हमारे समस्त पापों से शुद्ध करता है – शारीरिकता में जीवन बिताने के पाप से भी (इफि0 5:11–21)। विश्वासीजन के ज्योति में चलने को इस प्रकार भी समझा जा सकता है – रोमियों की पत्री के छठवें अध्याय में हम मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह–क्रूसित होने का ज्ञान पाते हैं, जो हमें आत्मा के अनुसार चलने के लिए स्वतंत्र करता है। जैसे–जैसे हम इस पथ पर अग्रसर होते हैं, वैसे–वैसे हमारे जीवन के द्वारा आत्मा के फल प्रकट होते हैं, और शनैः–शनैः हम मसीह के स्वभाव में ढलते जाते हैं (प0थिस्स0 5:5–8)।

"यदि हम कहें कि हम में पाप नहीं, तो अपने आप को धोखा देते हैं, और हम में सत्य नहीं है" (प0यूह0 1:8)। इससे पूर्व पहला यूहन्ना के पहले अध्याय के छठवें पद में हमने पढ़ा कि "यदि हम कहें कि उसके साथ हमारी सहभागिता है फिर भी अंधकार में चलें, तो हम झूठ बोलते हैं"। यहां छठवें, आठवें और दसवें पद के विचारों पर ध्यान दें : छठवें पद में हम दूसरों से झूठ बोलने की दिशा में थे, लेकिन इस आठवें पद में हम अपने ही झूठ को मानने की दिशा में हैं। हम अपने आप को ही धोखा देते हैं। पहला कुरिन्थियों के दूसरे अध्याय के चौदहवें पद में यह लिखा है – "परन्तु शारीरिक मनुष्य परमेश्वर के आत्मा की बातों को ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वे उसके लिए मूर्खतापूर्ण हैं और

वह उन्हें समझ नहीं सकता, क्योंकि उनकी परख आत्मिक रीति से होती है"। यद्यपि यह पद अविश्वासियों के बारे में लिखा है, लेकिन यह उन मसीहियों की दशा को भी दर्शाता है जो अंधकार (शारीरिकता) में चलते हैं।

"यदि हम अपने पापों को मान लें, तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है" (प0यूह0 1:9)। जब हमने अपने उद्धार के लिए मसीह पर विश्वास किया तब हमने परमेश्वर के समक्ष अपने पापीपन को स्वीकार किया और उसने हमारे अतीत, वर्तमान और भविष्य के समस्त पापों को पूर्णतः क्षमा किया (इफि0 1:7; 4:32; प0यूह0 2:12)। चूंकि हमारे सभी पाप पूर्णरूपेण क्षमा किए जा चुके हैं, इसलिए अब हम परमेश्वर की दृष्टि में दोषी नहीं हैं और इन पापों के बदले परमेश्वर के न्याय–दंड के भागी नहीं होंगे। हमारे समस्त पापों का समुचित दंड–मूल्य प्रभु यीशु मसीह द्वारा क्रूस पर चुकता किया जा चुका है और अब हम मसीह द्वारा प्रभु परमेश्वर के समक्ष पूर्णरूपेण स्वीकार्य (ग्रहणयोग्य) हैं (यूह0 5:24; रोमि0 5:1; 8:1)।

इससे पहले के आठवें पद में हमने यह पढ़ा : "यदि हम कहें कि हम में पाप नहीं, तो अपने आप को धोखा देते हैं और हम में सत्य नहीं है"। अब नौवें पद में यूहन्ना की बात पर ध्यान दें – "यदि हम अपने पापों को मान लें तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है"। इसलिए हे विश्वासी भाईयों, यदि हमारी ऐसी दशा है कि हम परमेश्वर की

सच्ची संगति में नहीं हैं, किन्तु हम दूसरों को यह कह कर धोखा दे रहे हैं कि हम उसकी संगति में हैं; या यदि हम अपने आप को यह कहकर धोखा दे रहे हैं कि हमने कोई पाप नहीं किया है; और अचानक पवित्र आत्मा हमें हमारी इस भूल के प्रति कायल करता है, तो यहां परमेश्वर–प्रदत्त उपचार दर्शाया गया है – प्रभु के समक्ष अपनी गलती (पाप) मान लें। मसीह के लहू द्वारा दिए गये दंड–मूल्य को अपनाएं एवं उस पर भरोसा करें – वह हमारे समस्त पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य एवं धर्मी है (इब्रा0 10:19)।

स्मरण रहे कि यद्यपि हमारे समस्त पापों का दंड–मूल्य एक ही बार सदा–सर्वदा के लिए चुकता किया जा चुका है और हम परमेश्वर की दृष्टि में धर्मी एवं पवित्र ठहराए जा चुके हैं, किन्तु हमारे इस जीवन में अभी भी शारीरिकता (पुराना आदम स्वभाव) वास करती है। जब हम अपने इस पुराने पाप–स्वभाव के प्रभाव एवं नियंत्रण में चलते हैं, तब हम उन्हीं पापों को करने की क्षमता रखते हैं जिन्हें हम उद्धार पाने से पहले करने में समर्थ थे। बेशक, हमारे समस्त पाप क्षमा किए जा चुके हैं, लेकिन कभी–कभी हम अपनी वर्तमान दोष–भावना से संघर्ष करते हैं। ऐसी दशा में परमेश्वर का वचन यहां यह संदेश देता है कि हमारे समस्त पापों का दंड–मूल्य चुकता किया जा चुका है और जब कभी हमसे पाप हो जाता है तो हमें इसे स्वीकार करना (मानना) है और हमारे पाप के बदले दिए गए मसीह के लहू रूपी दंड–मूल्य की पर्याप्तता पर आशा–भरोसा रखना है। ऐसा नहीं करना, अविश्वास में चलना है।

यद्यपि हमारे पापों का दंड–मूल्य सदा–सर्वदा के लिए चुकता किया जा चुका है और परमेश्वर हमें कभी अस्वीकार नहीं करेगा, तथापि वह हमसे यह चाहता है कि हम अपनी गलती एवं भूल (पाप/अपराध) को स्वीकार करें। अपने बच्चों के साथ माता–पिता के सम्बन्धों पर विचार करें। जब बच्चे अपने माता–पिता की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं तो क्या उन्हें घर–परिवार से बहिष्कृत कर दिया जाता है? अपने विद्रोही एवं दुखदायी व्यवहार के बावजूद भी वे अपने माता–पिता की संतान होते हैं। बेशक, हम यह चाहते हैं कि वे अपनी गलती पहचानें और आवश्यक सुधार (क्षतिपूर्ति) करें। यदि वे अपनी गलती को मानने, पहचानने एवं अपनी चाल–ढाल बदलने से इनकार करते हैं, तब माता–पिता अनुशासनात्मक कार्यवाही करते हैं। जो विश्वासी अपने पापीपन को मानते हुए अपने पापों के बारे में पिता परमेश्वर के दृष्टिकोण से सहमत होकर सारे अधर्म से शुद्ध होने के लिए परमेश्वर–प्रदत्त उपाय को स्वीकार करते हैं, वे उसकी संगति में पुनः वापस (स्थापित) होते हैं। इसके विपरीत जो लोग ख्रीष्त के लहू में विश्वास–विश्राम नहीं करते और उसके सह–क्रूसित होने की सच्चाई को इनकार करते हुए शारीरिकता का जीवन बिताते हैं, वे पवित्र आत्मा को शोकित करते हैं तथा पिता परमेश्वर द्वारा अनुशासित किए जाने को दावत देते हैं (इफि0 4:30; प0कुरि0 11:31–32)। हमें अपने स्वर्गिक पिता परमेश्वर की अनुशासनात्मक कार्यवाही को दंड नहीं समझना है। वह हमें दंडित करने के लिए नहीं बल्कि सुदृढ़, सुस्थिर, सुनिर्मित एवं शुद्ध करने के लिए

अनुशासित करता है, ताकि हमारी शारीरिकता बेपर्द हो और हम आत्मा के अनुसार जीवन व्यतीत करने की अपनी आवश्यकता के प्रति जागरूक हों (इब्रा0 12:5—11)।

"यदि हम कहें कि हमने पाप नहीं किया तो उसे झूठा ठहराते हैं, और उसका वचन हम में नहीं" (प0यूह0 1:10)। छठवें पद से दसवें पद तक के विचारों पर पुनः ध्यान दें! छठवें पद में दूसरों से झूठ बोलने या उन्हें धोखा देने की बात कही गई है; आठवें पद में स्वयं के झूठ को मानने या स्वयं को धोखा देने की बात कही गई है, दसवें पद में "परमेश्वर को झूठा ठहराने" के प्रलोभन में पड़ने की बात की गई है। हम दूसरों को धोखा दे सकते हैं और परमेयवर को धोखा देने की (व्यर्थ) कोशिश कर सकते हैं। जो लोग अपने पाप को छिपाते हैं और परमेश्वर के समक्ष अपने पापों को स्वीकार नहीं करते, वे आत्मा के चलाए नहीं चलते; ऐसे लोग सत्य के अनुसार आचरण नहीं करते। ऐसे विश्वासी कहलाने वाले लोग अपने आचरण से परमेश्वर को झूठा ठहराते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के वचन में प्राप्त सत्य के अनुसार जीवन नहीं व्यतीत करते। ऐसे लोग परमेश्वर के साथ सच्ची सहभागिता का आनन्द नहीं ले सकते (नीति0 28:13; भज0 32:1—6)।

2

पिता परमेश्वर के समक्ष, मसीह ही विश्वासियों के बदले संतोषपूर्ण भेंट–बलिदान और उनका सहायक–संरक्षक है। यूहन्ना अपनी इस पत्री के पहले अध्याय में यह लिखता है कि विश्वासियों में ऐसा कोई नहीं जिससे कभी कोई पाप नहीं होता। चूंकि हम सबसे पाप हो जाने की संभावना बनी रहती है, इसलिए कुछ विश्वासियों का इस (गलत) सोच का शिकार होना सम्भव है कि 'हम चाहे जैसा जीवन बिताएं कोई फर्क नहीं पड़ता'। यहां प्रेरित यूहन्ना इसी खतरनाक सोच के प्रति आगाह करता है। इसीलिए वह दूसरे अध्याय के पहले पद में यह लिखता है : "हे मेरे बच्चों मैं ये बातें तुम्हें इसलिए लिखता हूं कि तुम पाप न करो"। परमेश्वर ज्योति है (पूर्णरूपेण सिद्ध एवं पवित्र है), और वह अपनी संतानों से भी पवित्र जीवन की अपेक्षा रखता है (प0पत0 1:15–16)। इसमें कोई संदेह नहीं कि हम अपनी सामर्थ्य में परमेश्वर की इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने में असमर्थ हैं। परन्तु जैसे–जैसे हम (मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह–क्रूसित होने की सच्चाई पर आशा–भरोसा रखते हुए) पवित्र आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं, वैसे–वैसे प्रभु यीशु मसीह हमारे जीवन में एवं हमारे जीवन के द्वारा अपना जीवन पुनरुत्पादित करता है (गला0 5:16,22,23)।

"मेरे बच्चों, मैं तुम्हें ये बातें इसलिए लिख रहा हूं कि तुम पाप न करो। परन्तु यदि कोई पाप करता है तो पिता के पास हमारा एक सहायक है, अर्थात् यीशु मसीह जो धर्मी है" (प0यूह0 2:1)। यद्यपि परमेश्वर यह चाहता है कि हम पाप न करें तथापि हमारे द्वारा पाप हो जाना अवश्यम्भावी है। अतः प्रभु यीशु मसीह की तमाम सेवकाई में से एक सेवकाई 'स्वर्ग में हमारे लिए एडवोकेट' समान हमारा "सहायक" या पक्ष–समर्थक होना है। जब कभी हमसे पाप हो जाता है तब वही हमारे बदले पिता परमेश्वर के समक्ष हमारे **बचाव** में हमारा पक्ष–समर्थन करता है। इस बात को ठीक से समझना बहुत जरूरी है, अन्यथा हम इसका अनुचित मायने–मतलब निकालने लगेंगे।

सबसे पहले हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि विश्वासी लोग, पाप कर देने के बाद भी, परमेश्वर की संतान होते हैं; कुछ उसी तरह जैसे कि हमारे बच्चे अपने विद्रोहपूर्ण एवं दुखदायी आज्ञा–उल्लंघन तथा हमारे अनुशासनात्मक एवं सुधारात्मक व्यवहार के बावजूद भी हमारी संतान होते हैं। पिता परमेश्वर के साथ हमारे सम्बन्ध के बारे में भी ऐसा ही है – हमारे द्वारा पाप हो जाने के बावजूद भी वही हमारा (स्वर्गिक) पिता होता है और हम उसकी संतान होते हैं।

इस संदर्भ में दूसरी खास बात यह है कि जब यूहन्ना प्रभु यीशु मसीह को पिता परमेश्वर के समक्ष हमारा पक्ष–समर्थक दर्शाता है तो इसका मतलब यह नहीं कि

पिता परमेश्वर से ज्यादा कोमलता, दयालुता एवं सहानुभूति यीशु मसीह में है। नहीं, ऐसी बात नहीं है। पिता परमेश्वर एवं पुत्र परमेश्वर दोनों हमारे पाप से घृणा करते हैं, और दोनों हमारे प्रति बिना शर्त एक जैसा प्रेम रखते हैं। मनुष्य को पाप के दोष–दंड से बचाने के लिए पिता ने अपने "पुत्र" को हमारा उद्धारकर्ता होने के लिए भेजा और स्वर्ग में हमारे बचाव के पक्ष–समर्थन हेतु मसीह यीशु को हमारा सहायक, निवेदक एवं एडवोकेट नियुक्त किया। हमें यह नहीं सोचना है कि जब कभी हम पाप कर देते हैं तो हर बार फौरन मसीह यीशु हमारे वास्ते पिता परमेश्वर के पास दौड़ कर उसे अपने बलिदान की याद दिलाता है और ऐसा नहीं होने पर परमेश्वर हमें हमारे पापों के लिए दंडित करेगा। ऐसी बात नहीं है। हमारे सारे पापों के बदले मसीह यीशु के लहू द्वारा एक ही बार सदा–सर्वदा के लिए चुकता किए गये दंड–मूल्य को पिता परमेश्वर कभी नहीं भूलता। पापों का यह दंड–मूल्य जब पूर्णरूपेण चुकता किया गया, तब मसीह के मुंह से यह वाणी निकली : "पूरा हुआ" (इब्रा0 7:24–27; 9:11,12; 10:11–12)।

"मेरे बच्चों, मैं तुम्हें ये बातें इसलिए लिख रहा हूं कि तुम पाप न करो। परन्तु यदि कोई पाप करता है तो पिता के पास हमारा एक सहायक है, अर्थात् यीशु मसीह जो धर्मी है; वह स्वयं हमारे पापों का प्रायश्चित है, और हमारा ही नहीं वरन् समस्त संसार के पापों का भी" (प0यूह0 2:1–2)। यूहन्ना के कहने का अर्थ यह है कि विश्वासी से पाप हो जाने पर भी वह (ईश्वरीय) दोष–दंड

का भागीदार नहीं होता, क्योंकि हमारे बदले प्रभु परमेश्वर द्वारा स्वीकार्य, पूर्णरूपेण पर्याप्त एवं सिद्ध, उद्धारकर्ता मसीह यीशु रात–दिन पिता परमेश्वर के समक्ष उपस्थित है। उसके हाथ–पांव में अभी भी कीलों के दाग तथा पंजर में भाले के घाव पाए जाते हैं। यह सब हमारे पापों के बदले प्रभु यीशु द्वारा चुकता किए गये अद्वितीय दंड–मूल्य के चिन्ह हैं। इसीलिए, हमसे पाप हो जाने पर भी, पिता परमेश्वर यह स्मरण रखता है कि हमारे पापों का दंड–मूल्य चुकता किया जा चुका है।

रोचक है कि पहला यूहन्ना के पहले अध्याय के छठवें, आठवें और दसवें पदों में मनुष्यों का पापीपन दर्शाया गया है – दूसरों को धोखा देना (1:6) अपने आप को धोखा देना (1:8) और परमेश्वर को धोखा देने की कोशिश (1:10)। लेकिन इन पदों के फौरन बाद के पदों में इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है – मसीह का लहू (1:7), पाप–स्वीकारण (1:9) और मसीह यीशु हमारा उपचार (2:1)। "यदि कोई पाप करता है तो पिता के पास हमारा एक सहायक (एडवोकेट) है, अर्थात् यीशु मसीह जो धर्मी है"। रोमियों 8:34 में ये शब्द पाए जाते हैं : "वह कौन है जो दोष लगाएगा? मसीह यीशु ही है जो मरा, जो परमेश्वर के दाहिनी ओर है, और हमारे लिए निवेदन भी करता है"।

अतः यदि हम ऐसी अवस्था में हैं कि हमने पाप किया है और अंधकार में जीवन बिताते हुए दोष–भावना से

ग्रसित हैं तथा यह समझने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं कि महापवित्र परमेश्वर हमारे जैसे अभागे (अधम या नीच) व्यक्ति को कैसे क्षमा कर सकता है; तो मसीह द्वारा बहाए गये लहू को स्मरण करें, इस ईश्वरीय कार्य की पूर्णता व पर्याप्तता को स्वीकार करें और यह भी स्मरण रहे कि यीशु मसीह हमारा स्वर्गिक एडवोकेट है अर्थात् हमारे बचाव के लिए हमारा पक्ष–समर्थक सहायक। वह निरन्तर हमारे वास्ते पिता परमेश्वर के समक्ष निवेदन करता रहता है।

रोमियों की पत्री के आठवें अध्याय के पहले पद में यह लिखा है : "अतः अब जो मसीह यीशु में हैं, उन पर दंड की आज्ञा नहीं है"। अब पिता परमेश्वर हमें हमारे पापों के लिए क्यों नहीं दंडित करता? प्रभु यीशु मसीह के कारण, जिसने हमारे बदले वह ईश्वरीय प्रकोप सहा जो हमें सहना था। इसीलिए प्रभु परमेश्वर हमें दंडित करने के बजाय अपनी सुसंगति में रखता है।

ध्यान दें कि पहला यूहन्ना के दूसरे अध्याय के उपर्युक्त दूसरे पद के अनुसार मसीह यीशु की मृत्यु (बलिदान) समस्त संसार के समस्त लोगों के लिए पर्याप्त है। बेशक, मसीह की मृत्यु सारे संसार के सभी लोगों के पापों के दोष–दंड के बदले पूर्ण प्रायश्चित (पर्याप्त दंड–मूल्य) है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि संसार के सब लोग उद्धार पाएंगे। परमेश्वर के न्याय–दंड से सिर्फ वही लोग बचाए जाएंगे जो सुसमाचार सुनने–समझने के द्वारा मसीह यीशु के उद्धार–कार्य पर विश्वास करेंगे। जैसे

कि नूह ने अपने समय के लोगों को परमेश्वर का संदेश सुनाया और जल–प्रलय से बचने के लिए जलयान रूपी ईश्वरीय उपाय प्रदान किया गया। बहरहाल, ईश्वरीय न्याय–दंड से सिर्फ वही लोग बचाए गये जिन्होंने परमेश्वर के संदेश पर विश्वास करके उस विशिष्ट जलयान में प्रवेश किया। पहला यूहन्ना के दूसरे अध्याय के पहले पद के अनुसार प्रभु यीशु मसीह हमारा एडवोकेट या सहायक है, और दूसरे पद के अनुसार वही हमारा "प्रायश्चित" है। अर्थात् हमारे बदले 'प्रतिस्थापन्न बलिदान' या संतोषपूर्ण बलिदान। पिता परमेश्वर क्रूस पर हमारे बदले मसीह यीशु के प्रतिस्थापन्न बलिदान रूपी अद्वितीय उद्धार–कार्य से पूर्णरूपेण संतुष्ट है।

"यदि हम उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं, तो इसी से हमें ज्ञात होता है कि हम उसे जान गए हैं" (प0यूह0 2:3)। इस पद के बारे में कई लोग भ्रमित हो जाते हैं और इसका अर्थ कुछ इस प्रकार लगाने लगते हैं :– उसकी आज्ञाओं का पालन करने पर ही हम यह जानेंगे कि सचमुच उद्धार पा गए हैं। परन्तु इस पद का अर्थ समझने के लिए यूहन्ना की इस पत्री के लिखे जाने के उद्देश्य को ध्यान में रखना जरूरी है, और इसके साथ ही साथ प्रभु यीशु के साथ यूहन्ना के नजदीकी सम्बन्ध को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। यहां "जान गए" का मतलब सिर्फ पाप–क्षमा पाने, सिर्फ बच जाने या सिर्फ मसीही जीवन बिताने की कोशिश करने से बहुत गहरा है – प्रभु के साथ व्यक्तिगत, आध्यात्मिक, सामीप्य, लवलीनता यानि

उसकी सुसंगति व सहभागिता में स्थिरता व सुदृढ़ता। अतः तीसरे पद में यूहन्ना का संदेश यह है कि परमेश्वर के साथ हमारी व्यक्तिगत, नजदीकी व स्थिर सुसंगति की सुनिश्चयता (का ज्ञान) उसकी आज्ञाओं के पालन से होती है।

"जो कहता है, 'मैं उसे जान गया हूं' और उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करता, वह झूठा है, और उसमें सत्य नहीं" (प0यूह0 2:4)। तीसरे पद में यह कहा गया कि "उसकी आज्ञाओं को मानेंगे तो हम जान लेंगे कि उसे जान गए हैं"। अब इसके बाद चौथे पद की बात का आना स्वाभाविक है – "जो कोई यह कहता है, 'मैं उसे जान गया हूं' (अर्थात् नया जन्म प्राप्त, मसीह में स्थापित एवं उसके साथ सच्ची, गहन, नजदीकी सुसंगति में सुस्थिर विश्वासी) और उसकी आज्ञाओं को नहीं मानता, वह झूठा है और उसमें सत्य नहीं"। कहने का अर्थ यह है कि ऐसा नकली दावा करने वाला व्यक्ति पाखंड कर रहा है और दूसरों को धोखा दे रहा है (प0यूह0 1:6)।

"परन्तु जो उसके वचन का पालन करता है, उसमें सचमुच परमेश्वर का प्रेम सिद्ध हो चुका है। इसी से हम जानते हैं कि हम उस में हैं" (प0यूह0 2:5)। दूसरा कुरिन्थियों नामक पत्री के पांचवे अध्याय के चौदहवें पद में लिखा है : "मसीह का प्रेम हमें विवश कर देता है"। उसके प्रति हमारा प्रेम नहीं, बल्कि हमारे लिए मसीह का प्रेम। यहां यूहन्ना की पहली पत्री के दूसरे अध्याय के पांचवे पद में यह कहा गया है कि "जो कोई उसके वचन पर चले,

उसमें सचमुच परमेश्वर का प्रेम सिद्ध हुआ है"। हम में परमेश्वर के प्रेम के **सिद्ध** होने की बात पर जरा विचार करें। "क्योंकि परमेश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम रखा कि उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया, ताकि जो कोई उस पर विश्वास करे..." (यूह0 3:16)। इस प्रकार उद्धार परमेश्वर के प्रेम की देन है। प्रभु यीशु मसीह हमारे वास्ते क्रूसित किया गया। इसके अतिरिक्त पवित्रशास्त्र यह भी कहता है कि उसके साथ हम भी क्रूसित किए गये। यह सब परमेश्वर के प्रेम की देन है।

अतः जब हमारे जीवन के द्वारा ख्रीष्तीय जीवन (ख्रीष्त–जीवन) का प्रकटन होता है, जब हम मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के क्रूसित हो चुके होने की सच्चाई के आध्यात्मिक ज्ञान–पहचान में जीवन बिताते हैं, जब हम मसीह में बने रहते हैं, तब हम मसीह में लवलीन रहते हैं और जब उसका जीवन (स्वभाव) हमारे जीवन में पुनरुत्पादित (निर्मित) होता रहता है; तब 'हम नहीं, बल्कि मसीह हममें जीवित रहता है' (गला0 2:20)। तब उसके प्रेम को हम में सिद्ध करने की प्रक्रिया जारी रहती है और हम **उसके वचन पर चलते** हैं। यूहन्ना यह भी लिखता है कि "इसी से हम जानते हैं कि हम उसमें हैं"। अर्थात् तब हम यह जानते–समझते हैं कि हम प्रभु में बने हुए हैं, अर्थात् मसीह में अपने स्थापन्न–अधिकार की अवस्था के आधार पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उसके वचन का पालन हमारे जीवन–स्रोत पर, ख्रीष्त में हमारे स्थापना–अधिकार में स्थायित्व (उसमें बने रहने) पर तथा

हम में उसके जीवन के फलने–फूलने पर आधारित है, न कि हमारे किसी कर्म–प्रयास या अन्य प्रकार के किसी दबाव पर।

"जो कहता है कि मैं उस में बना रहता हूं तो वह स्वयं भी वैसा ही चले जैसा कि वह चलता था" (प0यूह0 2:6)। ख्रीष्त–जीवन के अनुसार जीवन व्यतीत करने वालों को यह सुनिश्चियता होती है कि वे ज्योति में जीवन जी रहे हैं और परमेश्वर की संतान हैं। इस पद में परमेश्वर के साथ हमारे सुसम्बन्ध का एक अन्य प्रमाण दर्शाया गया है – मसीह के स्वभाव में अधिकाधिक ढलते जाना। परमेश्वर का वचन यह बताता है कि मसीह यीशु क्रूस पर हमारे पापों का दंड–मूल्य देने हेतु बलि हुआ (मृत्यु–दंड सहा)। इस सत्य का ज्ञान (कायलियत) होने तथा विश्वास द्वारा इसे अपनाने के परिणामस्वरूप हमें उद्धार मिला। परमेश्वर का वचन यह भी सिखाता है कि (परमेश्वर की दृष्टि में या आध्यात्मिक मायने में) मसीह के साथ हमारा पुराना मनुष्यत्व सह–क्रूसित हुआ तथा मसीह के पुनरुत्थान के साथ हम भी नये जीवन के लिए जिलाए गये (रोमि0 6:3–5)। जैसे–जैसे हम इस सत्य के ज्ञान–पहचान में विश्वास–विश्राम करते हैं, वैसे–वैसे मसीह में बने रहने में तथा आत्मा के चलाए चलने में विकसित होते जाते हैं; और आत्मा द्वारा मसीह के स्वभाव में अधिकाधिक ढाले जाते हैं; और इस प्रकार "जैसे वह ज्योति है, वैसे हम भी ज्योति में चलते हैं" (प0पत0 2:21–23)।

"प्रियों, मैं तुम्हें कोई नई आज्ञा नहीं लिख रहा हूं, परन्तु वही पुरानी आज्ञा जो आरम्भ से ही तुम्हें मिली है, यह पुरानी आज्ञा वही वचन है जो तुम सुन चुके हो। फिर भी मैं तुम्हें एक नई आज्ञा लिख रहा हूं जो उस में और तुम में सत्य है; क्योंकि अंधकार मिटता जा रहा है और सत्य ज्योति चमक रही है" (प0यूह0 2:7–8)। यूहन्ना यह कहता है कि वह ऐसा कुछ नहीं लिख रहा जो कि प्रारम्भ से ही नहीं था (क्योंकि ईश्वरीय आज्ञाओं के पालन की बात पहले से ही है)। यूहन्ना इससे भी अधिक गहरी सच्चाई को लिख रहा था जो कि केवल "उस में" सच्ची ठहरती है तथा "हम में" तब सच्ची साबित होती है जब कि हम 'मसीह में' अपने स्थापना–अधिकार को पहचानते हैं और मसीह (का जीवन–स्वभाव) हम में निर्मित या पुनरुत्पादित होता रहता है।

"यह उस में और तुम में सच्ची ठहरती है; क्योंकि अंधकार मिटता जाता है और सत्य ज्योति अब चमकने लगी है"। यद्यपि यूहन्ना कोई नई आज्ञा नहीं लिख रहा था, लेकिन उसकी यह बात उनमें से अधिकतर को नई लग रही थीं जिन्हें उसने अपनी यह पत्री लिखी। वे लोग उद्धार–प्राप्ति से पूर्व जब शैतान की संतान की भांति जीवन व्यतीत कर रहे थे तब वे नफरत से ही परिचित थे, और दूसरों के प्रति प्रभु यीशु मसीह के अद्‌भुत प्रेम से अथवा एक–दूसरे से प्रेम रखने के बारे में उसकी आज्ञा से बिल्कुल अपरिचित थे (तीतुस 3:3)। अतः यूहन्ना जिन्हें यह पत्री लिख रहा था, उनके लिए यह बातें नई व गहरी

आध्यात्मिक सच्चाईयां थीं और इन्हें केवल वही ठीक से समझ सकते थे जो ख्रीष्त में लवलीनता एवं स्थिरता की ओर अग्रसर थे।

"जो कोई यह कहता है कि मैं ज्योति में हूं फिर भी अपने भाई से घृणा करता है, वह अब तक अंधकार में ही है" (प0यूह0 2:9)। यहां पुनः पाखंडी मसीहियों के दिखावे को बेपर्द किया गया है – अर्थात् झूठे मसीही जीवन का पर्दाफाश। कहने का मतलब यह है कि जो मसीही यह कहता है कि वह प्रभु में और उसमें प्राप्त आशिषों में है तथा मसीह में लवलीन रहते हुए उसके स्वभाव में उन्नति कर रहा है; लेकिन ऐसा मसीही विश्वासी यदि अपने भाई से नफरत रखता है तो वह ज्योति में जीवन नहीं बिता रहा है बल्कि अंधकार और शारीरिकता में चल रहा है। आगे के कुछेक पदों में ज्योति और अंधकार, प्रेम और बैर तथा परमेश्वर और संसार (संसारिकता) में विषमता (असमानता) दर्शायी गयी है। दोनों एक साथ नहीं रह सकते। उदाहरणार्थ, जिसमें ज्योति है उसमें उसी क्षण अंधकार नहीं हो सकता। प्रेमपूर्ण व्यवहार के साथ ही साथ बैर–भाव या नफरत करना सम्भव नहीं है। परमेश्वर में लवलीन रहते हुए संसारिकता को अपनाना संभव नहीं है। इन पदों से यह शिक्षा मिलती है कि जो व्यक्ति ज्योति में होने का दावा करता है, वह प्रेम से भरा होगा। यूहन्ना ने अपनी पुस्तकों में विश्वासियों द्वारा एक–दूसरे के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार को प्रमुखता दी है (यूह0 13:34; 15:17; प0यूह0 3:11; 3:23; 4:7; 4:11; दू0यूह0 5)।

"जो कोई अपने भाई से प्रेम करता है, वह ज्योति में बना रहता है, और उसमें कोई ठोकर का कारण नहीं" (प0यूह0 2:10)। इससे पहले नौवें पद में यह लिखा है कि "जो कोई... अपने भाई से बैर रखता है वह अब तक अंधकार में ही है"। इसके विपरीत दसवां पद कहता है : "जो कोई अपने भाई से प्रेम रखता है वह ज्योति में रहता है"। ऐसा जन मसीह में लवलीन होता है। रोचक है कि हमारा मसीही प्रेम विश्वासियों के समुदाय के बाहर तक प्रभावकारी होता है और अविश्वासियों पर असर डालते हुए उन्हें भी प्रभु की ओर आकर्षित करता है। यूहन्ना के सुसमाचार के तेरहवें अध्याय के पैंतीसवें पद में यह लिखा है : "इसी से सब जानेंगे कि तुम मेरे चेले हो" चाहे विश्वासी हों या अविश्वासी। "यदि आपस में प्रेम रखोगे, तो इसी से सब जानेंगे कि तुम मेरे चेले हो"। यदि हम मसीह में स्थिर एवं लवलीन (बने) रहते हैं तो ज्योति में होते हैं और ज्योति में बने रहने या होने के कारण ठीक से (सुस्पष्ट) देखते हैं और किसी से ठोकर खाकर गिरते नहीं।

"परन्तु जो कोई अपने भाई से घृणा करता है, वह अंधकार में है और अंधकार में चलता है, और नहीं जानता कि कहां जा रहा है, क्योंकि अंधकार ने उसकी आंखें अन्धी कर दी हैं" (प0यूह0 2:11)। इसका भावानुवाद कुछ इस प्रकार हो सकता है :— जो अपने भाई से बैर करता है वह ज्योति में नहीं चलता। ऐसा जन शारीरिकता में चल रहा है और शारीरिकता में चलने वाला जन यह नहीं जानता कि

उसकी शारीरिकता उसे कहां ले जाएगी। क्योंकि उसकी आंतरिक आंखें शारीरिकता द्वारा अंधी कर दी गई हैं और वह आत्मिक अंधकार में चल रहा है। अंधकार द्वारा अंधा कर दिए जाने के कारण, वह अपने मार्ग की दिशा से भटक कर भ्रमित हो गया है।

इफिसियों की पत्री में पौलुस यह लिखता है : "अन्य जातीय लोग अपने मन की अनर्थ रीति पर चलते हैं, तुम अब से फिर ऐसे न चलो" (इफि0 4:17)। "अपने मन की अनर्थ रीति" के अनुसार जीवन बिताना उन चीजों के पीछे भागना है, जिनका कोई शाश्वत् महत्व नहीं। शारीरिक या व्यर्थ की अभिलाषाओं के पीछे चलना प्रारम्भ करने पर हम पाप के भंवर–जाल रूपी गड्ढे में गिरते जाते हैं; और इस प्रकार हमारी समझ व बुद्धि अंधकारमय हो जाती है। इसीलिए यहां पहला यूहन्ना की पत्री के दूसरे अध्याय के ग्यारहवें पद में यह लिखा है कि "अंधकार ने उसकी आंखें अंधी कर दी हैं"। ऐसे जन की आत्मिक समझ जाती रहती है, जो कि शारीरिकता में जीवन जीने की देन (नतीजा) है। अतः जो मसीही परमेश्वर के प्रेमी होने का दावा करते हैं, किन्तु अपने भाई से नफरत करते हैं, वे आत्मिक अंधेरे में जीवन व्यतीत कर रहे हैं और शारीरिकता का जीवन जीने के कारण ठोकर खाते हैं।

3

"बच्चों मैं तुम्हें इसलिए लिख रहा हूं, क्योंकि तुम्हारे पाप उसके नाम के कारण क्षमा हुए हैं" (प0यूह0 2:12)। एक–दूसरे से प्रेम रखने की शिक्षा देने के बाद, अब यूहन्ना संसारिकता के प्रति चेतावनी देता है। हम परमेश्वर तथा संसारिकता दोनों से प्रेम नहीं कर सकते। उपर्युक्त पद में परमेश्वर के घराने में जन्म पाए सभी लोग शामिल हैं। मसीह यीशु पर विश्वास के द्वारा हम परमेश्वर की संतान हुए हैं। पिता परमेश्वर ने हमारे अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के सभी पापों को क्षमा कर दिया है। यह क्षमा इसलिए मिली क्योंकि मसीह यीशु के लहू के द्वारा हमारे समस्त पापों का दंड–मूल्य चुकता कर दिया गया है। यदि हमारे एक भी पाप का दंड–मूल्य चुकता करना शेष होता, तो हम नरक–दंड के भागीदार होते। आदम और हव्वा एक ही बार पाप किए, और अदन की वाटिका से बहिष्कृत कर दिए गये।

"पितरों, मैं तुम्हें इसलिए लिख रहा हूं, क्योंकि तुम उसको जानते हो जो आदि से है। युवकों, मैं तुम्हें इसलिए लिख रहा हूं, क्योंकि तुमने उस दुष्ट पर विजय पायी है। बच्चों, मैंने तुम्हें इसलिए लिखा है, क्योंकि तुम पिता को जानते हो। पितरों, मैंने तुम्हें इसलिए लिखा है, क्योंकि तुम उसको जानते हो जो आदि से है। युवकों, मैंने तुम्हें इसलिए लिखा है, क्योंकि तुम बलवान हो, और परमेश्वर का वचन तुम में बना रहता है, तथा तुमने उस दुष्ट पर

विजय पा ली है" (प0यूह0 2:13–14)। इन पदों में यूहन्ना ने परमेश्वर की संतानों को तीन प्रकार से सम्बोधित किया है : "बच्चों या बालकों", "पितरों" और "युवकों या जवानों"। यह तीनों शब्द विकास के तीन चरणों (अवस्थाओं) को दर्शाते हैं। जैसे किसी सामान्य परिवार में बच्चे, अधेड़ उम्र के माता–पिता और अन्य वृद्ध जन (दादा या नाना) होते हैं; कुछ उसी प्रकार परमेश्वर के घराने (कलीसिया) के लोग भी विकास की तीन विभिन्न अवस्थाओं में पाए जाते हैं। बेशक, परमेश्वर के घराने में हमारी अवस्था हमारी शारीरिक आयु अथवा लिंग–विभेद पर आधारित नहीं होती, बल्कि हमारी आध्यात्मिक परिपक्वता पर आधारित होती है। परमेश्वर के घराने में नया (जन्म) होने पर हम आत्मिक शिशुओं की तरह होते हैं; और हमारी समझ–बूझ भी थोड़ी होती है। परन्तु जैसे–जैसे परमेश्वर के वचन से हम ज्ञान–समझ में विकसित होते हैं और शारीरिकता के अधीन कम वरन् आत्मा के अधीन अधिक चलना सीखते हैं, वैसे–वैसे मसीह के स्वभाव में ढलते रहने की प्रक्रिया में और आगे बढ़ते हैं (आत्मिक जवानी में)। इस आत्मिक–विकास प्रक्रिया में और आगे बढ़ते रहने पर, आगे चलकर हम "पितरों" जैसी आध्यात्मिक परिपक्वता (ख्रीष्त–स्वभाव में प्रौढ़ता) की अवस्था में उन्नति करते हैं (प0पत0 2:2; इफि0 4:11–16)। "पितरों" जैसी परिपक्वता की अवस्था में उन्नति कर रहे विश्वासी प्रभु यीशु मसीह द्वारा क्रूस पर पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य पर विश्वास–विश्राम के सहारे ख्रीष्त–स्वभाव में बढ़ते रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप वे "ख्रीष्त–जीवन" आधारित जीवन जीते हैं और उनका जीवन सच्ची ईश्वरपरायणता का एक

सुन्दर उदाहरण होता है। जैसे किसी इहलौकिक परिवार में बुजुर्ग जन अन्य लोगों को सही शिक्षा व प्रोत्साहन प्रदान करते हैं, उसी प्रकार ऐसे आत्मिक (परिपक्व) विश्वासी कलीसिया के अन्य लोगों को सही शिक्षा व प्रोत्साहन प्रदान करते हैं।

भौतिक जीवन में प्रायः "जवान" लोग हृष्ट–पुष्ट एवं बलवान होते हैं और ऐसे लोग ही युद्ध के मैदान में जाने के लायक होते हैं। यूहन्ना के जमाने में भी विभिन्न देशों के बीच तमाम लड़ाईयां होती थीं और उन लड़ाईयों में अक्सर बलवान युवाओं को ही भेजा जाता था। आध्यात्मिक जीवन में "जवानों" (विश्वासियों) को भी तमाम (आत्मिक) शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। ये आत्मिक "जवान" ऐसे (विश्वासी) लोग होते हैं जिनमें मसीह के स्वभाव को ढालने की प्रक्रिया चल रही होती है और ऐसे लोग आत्मिक शत्रुओं का दृढ़तापूर्वक सामना कर सकते हैं। इन आध्यात्मिक "जवानों" को शैतान, संसार एवं शारीरिकता की बुरी अभिलाषा रूपी शत्रुओं का सुदृढ़ विश्वास के साथ सामना करना आवश्यक है।

यहां तेरहवें पद में प्रयुक्त "जय" अथवा "विजय" शब्द आत्मिक "जवानों" के दैनिक जीवन में आने वाली बुरी आजमाईशों और अभिलाषाओं के प्रसंग में प्रयोग हुआ है। केवल परमेश्वर के (जीवित एवं लिखित दोनों) वचन से ही हम मसीह के साथ अपने सह–क्रूसित होने की गहन आध्यात्मिक सच्चाई को जानते–समझते हैं और उस पर आशा–भरोसा रखते हुए विश्वास–विश्राम करते हैं। इसी से हम अपने दैनिक जीवन में शारीरिक अभिलाषाओं से

छुटकारा पाते हैं और अन्ततः उस दुष्ट पर विजयी होते हैं (रोमि0 6:1—14; गला0 2:20)।

"संसार से प्रेम न करो, और न उन वस्तुओं से जो संसार में हैं। यदि कोई संसार से प्रेम करता है तो उसमें पिता का प्रेम नहीं है" (प0यूह0 2:15)। याकूब की पत्री के चौथे अध्याय के चौथे पद में यह लिखा है : "हे व्यभिचारिणियों, क्या तुम नहीं जानतीं कि संसार से मित्रता करना परमेश्वर से शत्रुता करनी है? अतः यदि कोई संसार से मित्रता रखना चाहता है तो वह अपने आप को परमेश्वर का शत्रु बनाता है"। ध्यान दें कि संसार से मित्रता रखने वालों के लिए याकूब ने "व्यभिचारी" शब्द इस्तेमाल किया है। ऐसे लोग आध्यात्मिक व्यभिचार करते हैं। यूहन्ना अपनी पहली पत्री के दूसरे अध्याय के उपर्युक्त पन्द्रहवें पद में अपनी बात को (आत्मिक) **बच्चों, जवानों** और **पितरों** तीनों अवस्था के लोगों के लिए लिखता है। "संसार से प्रेम न करो, और न उन वस्तुओं से जो संसार में हैं। यदि कोई संसार से प्रेम करता है तो उसमें पिता का प्रेम नहीं है"। यहां लेखक का तात्पर्य यह है कि संसारिक चीजों के पीछे भागने वालों में 'परमेश्वर के प्रेम की सिद्धता/परिपक्वता' के विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध है। ऐसे लोग आत्मिक व्यभिचार में फंसे हैं, अर्थात् दूसरी चीजों के पीछे भाग रहे (पूजा कर रहे) हैं।

"क्योंकि वह सब जो संसार में है, अर्थात् शरीर की अभिलाषा, आंखों की लालसा और जीवन का अहंकार, पिता की ओर से नहीं परन्तु संसार की ओर से है" (प0यूह0 2:16)। उत्पत्ति की पुस्तक के तीसरे अध्याय में

शैतान द्वारा हव्वा को परीक्षा में डालने का वर्णन है। उस समय भी शैतान ने इन्हीं तीनों संसारिक प्रलोभनों का इस्तेमाल किया – "शरीर की अभिलाषा", "आंखों की अभिलाषा" और "जीवन का अहंकार"। **उत्पत्ति** के तीसरे अध्याय के छठवें पद में शैतान ने हव्वा से कहा कि परमेश्वर द्वारा वर्जित फल **खाने में अच्छा** (शरीर की अभिलाषा), **देखने में मनभाऊ** (आंखों की अभिलाषा) और **बुद्धि देने के लिए चाहने योग्य** है (जीवन का अहंकार)। इसके बाद मत्ती रचित सुसमाचार के चौथे अध्याय में जब मसीह की शैतान द्वारा परीक्षा की गई तब वह चालीस दिन से निराहार व भूखा था। उस समय शैतान ने मसीह यीशु को "पत्थर" को रोटियां बनाने का प्रलोभन दिया (शरीर की अभिलाषा); "सारे जगत का राज्य व वैभव दिखाकर" प्रलोभन में डालना चाहा (आंखों की अभिलाषा), और "मंदिर के शिखर से नीचे गिराने" (हीरो बनने या नाम कमाने) के प्रलोभन में डालना चाहा (जीवन का अहंकार)। इसीलिए यूहन्ना अपनी पत्री के उपर्युक्त सोलहवें पद में यह कहता है कि न तो संसार (संसारिकता) को **प्रेम** करो और न ही संसार की वस्तुओं से; क्योंकि संसार तो सिर्फ शरीर की अभिलाषा, आंखों की अभिलाषा एवं जीवन के अहंकार को बढ़ाता है, जो कि पिता परमेश्वर से नहीं बल्कि संसारिक है।

"संसार तथा उसकी लालसाएं भी मिटती जा रही हैं, परन्तु वह जो परमेश्वर की इच्छा पूरी करता है, सर्वदा बना रहेगा" (प0यूह0 2:17)। भावार्थ यह है कि संसार अस्थाई है तथा इसके प्रति हमारी लालसाओं की तृप्ति भी अस्थाई है। लेकिन परमेश्वर की इच्छा का अनुसरण

शाश्वत् महत्व का है। यहां यह भी स्मरण रखना है कि यूहन्ना जब **संसार** की बात करता है तो ऐसी संसारिक रीति, विधियों व पद्धतियों की बात कर रहा है जो लोभ, लालच व सत्ता जैसे शैतानी सिद्धान्तों पर आधारित हैं। यहां इस बात पर भी ध्यान देना रोचक है कि हममें से जो लोग संसारिक अभिलाषाओं के पीछे भाग रहे हैं, उनकी ये अभिलाषाएं सदैव अतृप्त (अपूर्ण) रहती हैं। संसार या संसारिक चीजों के पीछे भागने वाला व्यक्ति अस्थाई, क्षण भंगुर या नाशवान् चीजों पर अपना मन लगाता है। संसार की कोई भी चीज (रुपया–पैसा, धन–सम्पदा अथवा अन्य चीजें जिनसे हमारा लगाव होता है) हमें कभी भी पूर्णतः तृप्ति व संतुष्टि नहीं प्रदान कर सकतीं। संसार के प्रति आसक्ति (अनावश्यक लगाव व भोग–विलास) हमें कभी भी तृप्ति प्रदान नहीं करेगी, क्योंकि संसार का सब कुछ परिवर्तनशील, नश्वर, क्षणभंगुर एवं अस्थाई है। काम के दीवाने (अपने काम से) कभी भी पूरी तरह से तृप्त नहीं होंगे, क्योंकि वे जिन चीजों के लिए काम करते हैं, वह भी नश्वर हैं (मोटरगाड़ियां, घर–मकान, कपड़े या फिर अन्य चीजें पुरानी होती जाती हैं और समाप्त होती जाती हैं)। इसी प्रकार खाने–पीने व मौज–मस्ती की पार्टियों से मज़ा लेने वाले कभी भी पूर्णरूपेण संतुष्ट नहीं होंगे, क्योंकि ऐसे लोग जिस चीज के पीछे भाग रहे हैं, वह अस्थाई है। इसके विपरीत "जो परमेश्वर की इच्छा पर चलता है, वह सर्वदा बना रहेगा"। परमेश्वर की इच्छा एवं उसका काम क्या है? जिसे उसने भेजा है, उस पर विश्वास करना (यूह0 6:28–29)।

"बच्चों यह अंतिम घड़ी है, और जैसा तुमने सुना था कि मसीह–विरोधी आने वाला है, वैसे ही अब अनेक मसीह–विरोधी उठ खड़े हुए हैं" (प0यूह0 2:18)। पवित्रशास्त्र बॉइबल में "अंतिम समय" या "अंतिम घड़ी" शब्द सिर्फ **नया नियम** में ही प्रयोग हुआ है। यह शब्द अंतिम दिनों या अंतिम काल के लिए इस्तेमाल हुआ है अर्थात् मसीह के प्रथम आगमन और द्वितीय आगमन के बीच के समय के लिए। हम लोगों की तरह यूहन्ना के जमाने के लोग भी "अंतिम समय" में रह रहे थे। "जैसा तुमने सुना था" वाक्यांश, प्रेरितों द्वारा ख्रीष्त–विरोधी के बारे में दी गई शिक्षा की ओर इंगित करता है (कि वह **आने वाला** है)। इस सम्बन्ध में पौलुस ने दूसरा थिस्सलुनीकियों की पत्री के दूसरे अध्याय में भी लिखा है (दू0थिस्स0 2:3–10)। "मसीह का विरोधी" पूरी तरह से मसीह के विरुद्ध (ख्रीष्ट–विरोधी) होगा।

यहां जिसे **ख्रीष्ट–विरोधी** कहा गया है, वह संभवतः दूसरा थिस्सलुनीकियों के दूसरे अध्याय का "पाप पुरुष" है या फिर प्रकाशितवाक्य के तेरहवें अध्याय के प्रारम्भिक पदों का "पशु"। किसी भी व्यक्ति को मसीह–विरोधी कह देना और इस प्रकार मसीह के पुनः आगमन की भविष्यवाणी करना खतरनाक है। यूहन्ना ने ख्रीष्त–विरोधी के भावी आगमन का जिक्र इसलिए नहीं किया कि मसीही लोग उसको पहचानने में लग जाएं, बल्कि उसका उल्लेख इसलिए किया गया है कि विश्वासी लोग उन चीजों का सामना करने के लिए तैयार रहें जिनसे उनके विश्वास को गंभीर खतरे की आशंका है। यूहन्ना कहता है कि ख्रीष्त–विरोधी जैसा व्यवहार करने वाले अनेक लोग उसके

समय में भी सक्रिय थे (और आजकल भी हैं)। उस एकमात्र "ख्रीष्त–विरोधी" के प्रकट होने से पूर्व ऐसे तमाम मसीह–विरोधी दिखाई देंगे।

मानव इतिहास में अनगिनत बुरे लोग हुए हैं। इनमें से तमाम लोग उन समस्त ईश्वरीय सच्चाईयों के विरोधी भी थे जो मसीह यीशु द्वारा सम्पन्न उद्धार–कार्य एवं शिक्षाओं पर आधारित हैं। ऐसे लोगों को ख्रीष्त का विरोधी कहा जा सकता है। ऐसे लोग प्रत्येक पीढ़ी में पैदा हुए हैं और आगे भी होते रहेंगे, तथा अपनी बुराई में लगे रहेंगे। अंतिम समय में नकली मसीहियों के भेष में, दुर्बल विश्वासियों को प्रभु से दूर खींचने में लगे, झूठे शिक्षकों एवं ख्रीष्त–विरोधियों की सक्रियता बढ़ जाएगी, जैसा कि यूहन्ना के समय में था।

"वे निकले तो हम ही में से, परन्तु वास्तव में हम में से नहीं थे; क्योंकि यदि वे हम में से होते तो हमारे साथ रहते, परन्तु वे निकल इसलिए गए कि यह प्रकट हो जाए कि वे सब हम में से नहीं हैं" (प0यूह0 2:19)। यहां यूहन्ना उन लोगों की ओर इशारा करता है जिन्होंने कलीसियाओं को छोड़ दिया था। झूठे शिक्षक और ख्रीष्त–विरोधी गतिविधियों में लिप्त लोग कलीसियाओं से अपरिचित लोग नहीं थे। बल्कि ये लोग कलीसियाई समुदाय से जुड़े लोग थे जो कि यूहन्ना तथा अन्य विश्वासियों की संगति–सहभागिता में थे। परन्तु जब कलीसियाई अगुवों तथा अन्य विश्वासियों ने उनकी मसीह सम्बन्धी भ्रामक शिक्षाओं को ग्रहण नहीं किया तब वे उन्हें छोड़कर अपनी गलत शिक्षाओं को दूसरों के मध्य प्रचारित करने लगे। यहां

यूहन्ना यह कह रहा है कि ऐसे लोग वास्तव में कलीसिया के सच्चे अंग थे ही नहीं। यदि वे मसीह के सच्चे विश्वासी होते तो कलीसिया में ही रहते।

"परन्तु तुम्हारा अभिषेक तो उस पवित्र से हुआ है, और तुम सब जानते हो" (प0यूह0 2:20)। मसीह यीशु सम्बन्धी सच्ची शिक्षा को नापसन्द (अस्वीकार) करने के कारण चर्च छोड़कर चले जाने वाले नकली मसीहियों के विपरीत, सभी सच्चे विश्वासियों का "उस पवित्र" अर्थात् प्रभु यीशु मसीह से "अभिषेक हुआ" है। यहां जिस **अभिषेक** की बात की गई है, वह **पवित्र आत्मा** है, जो परमेश्वर की प्रत्येक संतान को उसी क्षण प्राप्त हो जाता है, जब वे प्रभु यीशु को अपना उद्धारकर्ता मानकर उस पर विश्वास करते हैं। पुराना नियम–काल में कुछ खास लोगों तथा कुछ खास वस्तुओं (जैसे कि याजकों व मिलाप–तम्बू में इस्तेमाल होने वाले सामानों) का तेल से (जो कि पवित्र आत्मा का प्रतीक है) अभिषेक होता था। ऐसा अभिषेक इस बात का प्रमाण था कि वह खास व्यक्ति या वस्तु केवल प्रभु परमेश्वर की महिमा के उपयोग के लिए ही अर्पित की गई, पृथक की गई व अभिषिक्त की गई है (निर्ग0 28:41; 30:23–38; दू0शमू0 2:4; प0राजा 19:16)।

प्रभु यीशु ने स्वर्ग पर उठा लिए जाने के बाद, अपने विश्वासियों में वास करने के लिए अपना पवित्र आत्मा भेजा ताकि वह उन्हें **उसके** लिए पृथक करे तथा उन्हें समस्त सत्य सिखाए (प0कुरि0 6:19–20; यूह0 14:16–17; 16:12–14)। उपर्युक्त बीसवें पद में यूहन्ना जब यह लिखता है कि "तुम सब जानते" हो, तो इसका मतलब

यह नहीं कि हम सब कुछ जानते हैं जो परमेश्वर जानता है या उसके लिखित वचन के बारे में सब कुछ जानते हैं। नहीं, इस मायने में हम सब कुछ नहीं जानते। बल्कि यूहन्ना की बात का भावार्थ यह है कि परमेश्वर हमें जो कुछ सिखाना चाहता है, वह सब सीखने–समझने की हम में क्षमता व योग्यता है, क्योंकि हम में (उसके द्वारा दिया गया) सत्य का **आत्मा** वास करता है (प0कुरि0 2:11–12)।

"मैंने तुम्हें इसलिए नहीं लिखा कि तुम सत्य को नहीं जानते, वरन् इसलिए कि तुम उसे जानते हो, क्योंकि कोई झूठ सत्य की ओर से नहीं। झूठा कौन है, केवल वह जो यीशु के मसीह होने का इनकार करता है? यही मसीह–विरोधी है, अर्थात् जो पिता और पुत्र का इनकार करता है। जो पुत्र का इनकार करता है, उसके पास पिता नहीं; और जो पुत्र को मान लेता है, उसके पास पिता भी है" (प0यूह0 2:21–23)। महान सत्य यह है कि **यीशु ही मसीह** है, अर्थात् परमेश्वर का एकलौता पुत्र, जो पाप के बदले बलि होने (मरने) के लिए देह धारण किया। यूहन्ना के समय के ख्रीष्त–विरोधी लोग परमेश्वर को मानने का दावा करते हुए मसीह यीशु का इनकार व विरोध कर रहे थे। यीशु मसीह तो परमेश्वर का "एकलौता पुत्र" है, इसलिए परमेश्वर के सच्चे विश्वासी के लिए मसीह का इनकार या विरोध करना असम्भव है। मसीह का इनकार करना, परमेश्वर को उसके अपने इस अधिकार से वंचित करना है कि वह स्वयं को संसार पर जैसे चाहे प्रकट कर सकता है।

जो लोग मसीह को "परमेश्वर का एकलौता पुत्र" मानकर ग्रहण करते हैं, वे परमेश्वर को भी ग्रहण करते हैं – इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। अनेक भ्रामक शिक्षक एवं समूह स्वयं को क्रिश्चियन तो कहते हैं, लेकिन यीशु ख्रीष्त के परमेश्वरत्व को नहीं मानते। **यूनिटैरियन चर्च** जैसी मंडलियां मसीह को परमेश्वर का (एकलौता) पुत्र नहीं मानतीं। अतः हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "पुत्र" परमेश्वर का इनकार करने वाले "पिता" परमेश्वर को नहीं जान सकते; क्योंकि **पिता** का ज्ञान सिर्फ **पुत्र** द्वारा ही संभव है (मत्ती 11:27; यूह0 14:6–9)।

सीधे–सादे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यीशु मसीह को अस्वीकार करना परमेश्वर को अस्वीकार करना है। इसके विपरीत "पुत्र" को अंगीकार करने का मतलब "पिता" को भी पाना। प्रभु परमेश्वर अपने विश्वासियों से यह चाहता है कि वे मसीह यीशु के अनुग्रह एवं ज्ञान में बढ़ते रहें और पवित्रशास्त्र के अध्ययन–मनन द्वारा ख्रीष्त–विषयक इन बुनियादी सच्चाईयों के बारे में गहरी समझ प्राप्त करें। मसीह यीशु सदा–सर्वदा के लिए परमेश्वर का एकलौता "पुत्र" है, और पाप के लिए उसका बलिदान भी (चिर) स्थायी है। पवित्र बाइबॅल की यह सुस्पष्ट एवं आधारभूत शिक्षा है।

"जहां तक तुम्हारा सम्बन्ध है, तुमने जो आरम्भ से सुना है, उसे अपने में बना रहने दो। जो कुछ तुमने आरम्भ से सुना है, यदि वह तुम में बना रहे तो तुम भी पुत्र में और पिता में बने रहोगे" (प0यूह0 2:24)। यूहन्ना यह चेतावनी दे रहा है कि हमें उस शिक्षा में बने रहना चाहिए

जिसे प्रभु के प्रेरितों ने कलीसिया के आरम्भ अर्थात् पिन्तेकुस्त के दिन से ही दिया। ऐसे लोगों से हमें भी सावधान रहना चाहिए जो ऐसी किसी शिक्षा, ज्ञान–प्रकाशना या नए सिद्धान्त को जानने–मानने का दावा करते हैं जो परमेश्वर के वचन (बाइबॅल) की आधारभूत शिक्षाओं के अनुसार नहीं है। अब कोई "नया" सत्य नहीं प्रकट होता – मनुष्य के लिए, परमेश्वर–प्रदत्त समस्त सत्य, पवित्रशास्त्र में लिपिबद्ध है।

"जो प्रतिज्ञा स्वयं उसने हम से की है, वह यह है, अर्थात् अनन्त जीवन" (प0यूह0 2:25)। यूहन्ना के सुसमाचार के तीसरे अध्याय के सोलहवें पद के इन शब्दों पर ध्यान दें : "क्योंकि परमेश्वर ने जगत से ऐसा प्रेम किया कि उसने अपना एकलौता पुत्र दे दिया, कि जो कोई उस पर विश्वास करे वह नाश न हो, परन्तु अनन्त जीवन पाए"। परमेश्वर का यह अटल वायदा है कि मसीह यीशु पर आशा–भरोसा एवं विश्वास करने वालों को अनन्त जीवन मिलेगा। हमारी भूमिका सिर्फ विश्वास करना है अर्थात् इस वायदे को करने वाले प्रभु परमेश्वर के स्वभाव पर विश्वास–विश्राम करना, और उस पर यह भरोसा रखना कि वह अपनी बात का सच्चा, पक्का व पूरा करने वाला प्रभु परमेश्वर है।

"मैंने यह बातें तुम्हें उन लोगों के सम्बन्ध में लिखी हैं जो तुम्हें धोखा देने का यत्न कर रहे हैं" (प0यूह0 2:26)। इन बातों को लिखने के पीछे प्रभु के इस प्रेरित के उद्देश्य पर ध्यान दें। यह बातें इसलिए लिखी गईं, क्योंकि झूठे शिक्षक विश्वासी लोगों को शुरू से ही सिखाए गये

सुसमाचार सम्बन्धी सिद्धान्तों से भरमाने में लगे हुए थे। अतः यूहन्ना ने मसीहियों को ऐसे भ्रामक लोगों से सतर्क रहने के लिए यह बातें लिखीं।

"जहां तक तुम्हारा सम्बन्ध है, वह अभिषेक जो तुमने उस से प्राप्त किया है, तुम में बना रहता है, और तुम्हें इस बात की आवश्यकता नहीं कि कोई तुम्हें सिखाए; परन्तु जिस प्रकार उसका वह अभिषेक तुम्हें सब बातों के विषय में सिखाता है, और सत्य है और झूठ नहीं, और जैसा कि उसने तुम्हें सिखाया है, तुम उसमें बने रहो" (प0यूह0 2:27)। प्रभु के दास यूहन्ना ने सुस्पष्ट किया कि पवित्र आत्मा रूपी "अभिषेक" विश्वासियों में "बना रहता" है। परमेश्वर के घराने में जन्म पाए सच्चे मसीही विश्वासी को पवित्र आत्मा कभी नहीं छोड़ेगा। सत्ताईसवें पद में जब वह कहता है कि "इस बात की आवश्यकता नहीं कि कोई तुम्हें सिखाए", तो इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिए कि पवित्रशास्त्र की शिक्षा व सहायता देने हेतु हमें ईश्वर–भक्त शिक्षकों की आवश्यकता नहीं है। यदि ऐसा होता तो प्रभु अपने प्रेरितों को कलीसिया में शिक्षा देने नहीं भेजता और न ही कलीसिया के कुछ लोगों को शिक्षा का वरदान दिया होता (इफि0 4:11–14)। इसके विपरीत यूहन्ना यह कह रहा था कि प्रभु के सच्चे विश्वासियों को ऐसे भ्रामक शिक्षकों से शिक्षा लेने की जरूरत नहीं है जो पवित्रशास्त्र से परे व पवित्रशास्त्र–विरुद्ध शिक्षा देते हैं।

4

"अतः हे बच्चों, उसमें बने रहो, जिससे कि जब वह प्रकट हो तो हमें साहस हो और उसके आगमन पर हमें उसके सम्मुख लज्जित न होना पड़े" (प0यूह0 2:28)। उसमें "बने रहने" के विचार में उसे मानना, उस पर भरोसा रखना, उसमें विश्वास–विश्राम करना और उसी पर आश्रित रहना शामिल है। यूहन्ना रचित सुसमाचार के पन्द्रहवें अध्याय में 'डाली एवं दाखलता' का परस्पर सम्बन्ध भी यही दर्शाता है। "बने रहने" में हाथ–पांव चलाने या कर्म–प्रयास की बात नहीं, बल्कि अस्तित्व में "होने" की बात पाई जाती है। डाली दाखलता को नहीं संभाले रखती, बल्कि दाखलता डाली को संभाले रखती है। गहन आध्यात्मिक सच्चाई यह है कि मसीह यीशु द्वारा क्रूस पर सम्पन्न उद्धार–कार्य एवं उसके साथ हमारे सह–क्रूसित होने के द्वारा मसीह में "बने रहने" तथा मसीही जीवन बिताने के लिए विश्वासियों के वास्ते सभी आवश्यक उपाय कर दिये गये (सारी आत्मिक आशिषें उपलब्ध) हैं। अब यदि हम न तो आत्मा के चलाए चलते हैं और न ही मसीह में बने रहते हैं, और यह दर्शाते हैं जैसे कि प्रभु यीशु ने हमारे वास्ते कुछ नहीं किया; तो उसके प्रकट होने पर उससे मिलकर लज्जित व शर्मिन्दा होंगे।

"यदि तुम जानते हो कि वह धर्मी है तो यह भी जानते हो कि प्रत्येक जो धार्मिकता पर आचरण करता है,

उस से उत्पन्न हुआ है" (प0यूह0 2:29)। इस पद में प्रयुक्त "यदि" शब्द मूल भाषा यूनानी के जिस शब्द से लिया गया है उसे "चूंकि या क्योंकि" भी अनूदित किया जा सकता है। यूहन्ना का तर्क यह है : चूंकि परमेश्वर धर्मी है, इसलिए हमारी धार्मिकता का स्रोत वही है। यदि कोई व्यक्ति पवित्र एवं धार्मिकतापूर्ण आचरण कर रहा है तो इसका मतलब यह है कि उसे यह धार्मिकता प्रभु परमेश्वर से प्राप्त हुई है। यशायाह की पुस्तक के 64:6 में लिखा है कि हमारे सारे "धर्म के काम मैले चिथड़ों" के समान हैं। यूहन्ना यह नहीं सिखा रहा है कि सुकर्म करने से पापीजन परमेश्वर की संतान बन सकता है; बल्कि वह यह सिखा रहा है कि सुकर्म या सही आचरण इस बात का प्रतीक है कि ऐसे लोग परमेश्वर से नया जीवन (जन्म) पाए हैं। इस बाइबॅल–पद से यह भी नहीं सिखाया जा रहा है कि परमेश्वर की ओर से नया जन्म पाए (विश्वासी) लोग निरन्तर धार्मिकतापूर्ण आचरण ही करते हैं। हम जानते हैं कि विश्वासी लोग शारीरिकता एवं पाप के चलाए भी व्यवहार कर देते हैं। इस पद से यह शिक्षा मिलती है कि धार्मिकता (रास्तबाज़ी) वास्तविक मसीही होने का दृश्यमान प्रमाण है। धार्मिक आचरण उद्धार नहीं कर सकता, बल्कि यह तो सच्चे विश्वास की उपस्थिति को दर्शाता है। याकूब की पत्री के दूसरे अध्याय के चौदहवें से अट्ठारहवें पदों पर ध्यान दें। वर्तमान संदर्भ में प्रमुख बात अट्ठारहवें पद में पाई जाती है : "...मैं अपना विश्वास अपने कर्मों के द्वारा तुझे दिखाऊंगा"। तात्पर्य यह है कि यदि आप वास्तव में मेरे विश्वास को जानना चाहते हैं तो मेरे जीवन (आचरण)

पर दृष्टि डालें (प0कुरि0 4:14—17; दू0कुरि0 11:2; कुलु0 1:28; याकूब 3:1)।

"देखो, पिता ने हमें कैसा महान् प्रेम प्रदान किया है कि हम परमेश्वर की संतान कहलाएं, और वही हम हैं। इस कारण संसार हमें नहीं जानता, क्योंकि संसार ने उसे भी नहीं जाना" (प0यूह0 3:1)। मूल भाषा यूनानी में "देखो... कैसा महान" — किसी दूसरे देश से आई हुई, विदेशागत्, अत्यन्त आकर्षक एवं मानव समझ से परे की चीज़ की ओर इशारा करता है। इसे यूं भी कहा जा सकता है — 'देखो पिता ने हम पर कितना विस्मयकारी एवं आकर्षक प्रेम उंडेल रखा है'। बेशक, परम प्रधान परमेश्वर का यह अद्भुत प्रेम 'दूसरी दुनिया' से आया है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि यह ईश्वरीय प्रेम मनुष्य जाति को **विदेशी** प्रतीत होता है। इस महान प्रेम के हम पर उंडेले जाने का प्रमुख प्रमाण यह है कि पिता परमेश्वर ने हमें अपनी संतान होने का अधिकार प्रदान किया है। प्रभु यीशु के देहधारी होकर इस संसार में आने पर लोगों ने उसे अपने सृष्टिकर्ता परमेश्वर के रूप में नहीं पहचाना। यहां तक कि बाइबॅल के **पुराना नियम** से परिचित यहूदी लोगों ने भी उसे नहीं पहचाना कि जिस प्रतिज्ञात् उद्धारकर्ता के आने के बारे में सदियों से पवित्रशास्त्र में भविष्यवाणी की गई थी, वह यही है (यूह0 1:10—11)।

जिस प्रकार उस समय अविश्वासियों ने प्रभु यीशु मसीह को नहीं पहचाना और उसे अस्वीकार किया, उसी प्रकार वे आज भी मसीही विश्वासियों से अक्सर नफरत करते हैं, और यह नहीं समझते कि परमेश्वर की कृपा से

हमें उसकी संतान होने का अधिकार मिला है (यूह0 15:18–21)।

"प्रियों, हम परमेश्वर की संतान हैं, और अब तक यह प्रकट नहीं हुआ कि हम क्या होंगे। पर यह जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम उसके सदृश होंगे, क्योंकि हम उसको ठीक वैसा ही देखेंगे जैसा वह है" (प0यूह0 3:2)। तीसरे अध्याय के पहले पद की सच्चाई की यहां पुनः पुष्टि की गई है कि विश्वासीजन परमेश्वर की संतान हैं – वर्तमान काल में। भावी समय में परमेश्वर के लोगों के लिए इतनी अद्‌भुत एवं महान आशिष प्रतीक्षा कर रही है कि उसका वर्णन करना असम्भव है – वर्तमान आशिषों से अत्यन्त महान व महिमामय आशिषें। बेशक, अभी हमें यह नहीं बताया गया है कि (उस समय) हम क्या होंगे; परन्तु इतना सुनिश्चित है कि अद्‌भुत एवं महिमापूर्ण अवस्था होगी। मसीही विश्वासीजन परमेश्वर के घराने का हो गया है। वर्तमान समय में हम ईश्वरीय करुणा एवं आशिषों का मसीह के माध्यम से रसास्वादन करते हैं, लेकिन भविष्य में हम उसकी महिमा के सहभागी होंगे। वर्तमान में हम **धुंधले दर्पण** द्वारा देख रहे हैं; और उन (भावी) महिमावान आशिषों की विस्तृत जानकारी नहीं रखते (कि उस समय हम क्या होंगे) क्योंकि हम पर अभी यह प्रकट नहीं किया गया है। लेकिन इतनी जानकारी सुनिश्चित है कि जब वह पुनः प्रकट होगा तब "हम उसके समान होंगे"।

क्रूस पर बलिदान तथा पुनः जीवित होने के बाद, प्रभु यीशु जब स्वर्ग में उठा लिया गया, तब उसने अपनी देह को इस धरती पर नहीं छोड़ा, जैसा कि मसीहियों के

मरने पर होता है। प्रभु यीशु मसीह अपनी पुनरुत्थान–प्राप्त देह में पिता के पास वापस गया। प्रेरित यूहन्ना के कहने का मतलब यह नहीं है कि स्वर्ग पहुंचने पर हम सभी उसी रूप में दिखाई देंगे, जैसा कि अपनी पुनरुत्थान–प्राप्त देह में मसीह दिखाई देता है। हम लोगों की अपनी (भिन्न प्रकार की) देह होगी (प0कुरि0 15:37–44)। यद्यपि हम सब एक समान नहीं दिखाई देंगे, तथापि हम सब "मसीह समान" होंगे।

"प्रत्येक जो उस पर ऐसी आशा रखता है, वह अपने आप को वैसा ही पवित्र करता है जैसा कि वह पवित्र है" (प0यूह0 3:3)। प्रत्येक विश्वासी मसीही में यह आशा पाई जाती है कि एक दिन हम **उसके समान** होंगे। यह कैसे होगा? दूसरा कुरिन्थियों की पत्री के तीसरे अध्याय के अट्ठारहवें पद के अनुसार, जैसे–जैसे हम मसीह पर दृष्टि लगाए रहते हैं, वैसे–वैसे पवित्र आत्मा द्वारा हमें उसके स्वभाव में परिवर्तित किया जाता है। हमारी यह आशा उसी में है। जब हम मसीह में प्राप्त अपने आध्यात्मिक आशिष–अधिकार पर आधारित जीवन बिताते हुए उसी में लवलीन रहते हैं तब पवित्र आत्मा द्वारा मसीह के स्वभाव में परिवर्तित किये जाते रहते हैं; और इस प्रकार हमारे जीवन में पवित्रीकरण की प्रक्रिया जारी रहती है; ताकि हम पवित्र हों, जैसे कि **वह पवित्र** है। इस प्रकार, जब हमारे जीवन में ख्रीष्त–स्वभाव निर्मित होता है, और **हम नहीं** बल्कि "मसीह मुझ में" जीवित रहता है, तब हमारे द्वारा मसीह प्रदर्शित होगा, अर्थात् पवित्रता।

"प्रत्येक जो पाप करता है वह व्यवस्था का उल्लंघन करता है; क्योंकि पाप व्यवस्था का उल्लंघन है" (प0यूह0 3:4)। पहले पद से तीसरे पद तक व्यक्त पवित्रता की बात के विपरीत, चौथे पद में पाप की परिभाषा दी गई है। जिस जीवन में मसीह की पवित्रता होती है, वह मसीह में लवलीन होता है। जिस जीवन में यह पवित्रता नहीं पाई जाती, वह न तो मसीह में बना रहता है और न ही उसमें लवलीन होता है। विश्वास के सहारे **आत्मा** के अधीन जीवन बिताने के बजाए, शारीरिकता के सहारे जीवन बिताना पाप का जीवन है।

"तुम जानते हो कि वह इसलिए प्रकट हुआ कि पापों को हर ले जाए; और उसमें कोई भी पाप नहीं" (प0यूह0 3:5)। मसीह यीशु का बलिदान सिर्फ पाप–क्षमा और पाप का दंड–मूल्य देने के लिए नहीं, बल्कि उसके विश्वासियों को पाप के जीवन की गुलामी से मुक्त करने के लिए भी था। प्रभु यीशु मसीह पाप के अधिकार–शक्ति एवं उसकी सत्ता को समाप्त करने आया। यह हमारे जीवन में तब प्रभावकारी होता है, जब हम मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह–क्रूसित होने की सच्चाई को जानने–पहचानने लगते हैं (रोमि0 6:6)।

यूहन्ना यह भी कहता है कि "उसके (मसीह के) स्वभाव में पाप नहीं" है। परमेश्वर की दृष्टि में अर्थात् सैद्धान्तिक तौर पर विश्वासीजन अब **मसीह में** हैं; और परिस्थिति की दृष्टि से (इस दुनिया में) **वह** 'विश्वासी में' है। अतः जब हम विश्वास द्वारा अपने ईश्वरीय (आध्यात्मिक) आशिष–अधिकार को पहचानते हुए **उसमें** हर

क्षण व हर दिन बने रहते हैं, तब अपने आप को पाप के अधिकार–सत्ता से मुक्त पाते हैं। इस बात को समझने में आगे का पद भी सहायक है।

"जो उसमें बना रहता है, वह पाप नहीं करता; जो पाप करता है, उसने न तो उसे देखा है और न ही उसे जानता है" (प0यूह0 3:6)। इस पद को समझने के लिए "बने रहना" और "जानना" शब्द महत्वपूर्ण हैं। आइए, पहले इस वाक्यांश पर ध्यान दें कि "जो कोई उसमें बना रहता है, वह पाप नहीं करता"। भावार्थ यह है कि ऐसा व्यक्ति प्रभु में लवलीन रहता है, उसमें विश्वास–विश्राम करता है यानि उसमें बना रहता है। जब हम प्रभु यीशु मसीह में इस प्रकार लगे, लिपटे व लवलीन रहते हैं कि उसमें बने रहते हैं और हमारे जीवन में उसका जीवन–स्वभाव फलता–फूलता है, तब हम पाप नहीं करेंगे।

मत्ती रचित सुसमाचार के चौदहवें अध्याय में पतरस के पानी पर चलने का उल्लेख है (मत्ती 14:28–31)। वह प्रभु यीशु मसीह में इतना लवलीन था कि **उस** पर विश्वास एवं दृष्टि रखते हुए पानी पर चल दिया। वह परिस्थिति पर ध्यान देने के बजाए पूर्णतः प्रभु की ओर ध्यान–केन्द्रित किए हुए उसी की ओर दृष्टि लगाए था। परन्तु जैसे ही उसका ध्यान हवा–पानी की ओर अर्थात् उसके नियंत्रण से परे की परिस्थितियों पर केन्द्रित हुआ, वह प्रभु के बजाए दूसरी ओर मन लगाने लगा। नतीजतन, (मसीह के बजाए दूसरी चीजों या परिस्थितियों पर मन लगाने पर) वह डूबने लगा। पहला यूहन्ना के तीसरे अध्याय के उपर्युक्त छठवें पद के दूसरे हिस्से में यह लिखा है : "जो कोई पाप करता है,

उसने उसे नहीं देखा है"। अर्थात् ऐसा व्यक्ति प्रभु यीशु मसीह में लवलीन नहीं रहता, और "न तो उसको जानता है"। सवाल यह नहीं कि हम प्रभु के बारे में जानते हैं या नहीं; बल्कि खास बात यह है कि क्या हम प्रभु यीशु मसीह को सचमुच जानते–पहचानते हैं। क्या उसके साथ हमारी घनिष्ठ आध्यात्मिक संगति–सहभागिता है? अफसोस है कि बहुत से मसीही अपने पापमय कार्य–व्यवहार के बावजूद भी प्रभु के साथ संगति–सहभागिता एवं उसमें बने रहने की बात करते हैं। इस संदर्भ में हमें पहला यूहन्ना के पहले अध्याय के छठवें पद की बात को नहीं भूलना चाहिए : "यदि हम कहें कि उसके साथ हमारी सहभागिता है, और फिर अंधकार में चलें, तो हम झूठे हैं"।

"बच्चों कोई तुम्हें धोखा न दे। जो धार्मिकता का आचरण करता है, वह धर्मी है, ठीक वैसा की जैसा वह धर्मी है" (प0यूह0 3:7)। अक्सर ऐसे मसीही मिलते हैं जो प्रभु को जानने की बात तो करते हैं, किन्तु उनका आचरण अधार्मिक होता है। प्रेरित यूहन्ना ऐसे लोगों के भ्रम–जाल में नहीं आने की चेतावनी देता है।

विश्वासी का धार्मिकतापूर्ण व्यवहार यह दर्शाता है कि वह धर्मी है, क्योंकि प्रभु यीशु धर्मी है। स्मरण रहे कि धार्मिकता के कार्य–व्यवहार से हम धर्मी नहीं ठहराए जाते। जैसे किसी वृक्ष का अच्छा फल यह दर्शाता है कि वह एक अच्छा वृक्ष है; उसी प्रकार विश्वासीजन में पाई जाने वाली धार्मिकता प्रभु यीशु मसीह की देन है। फल, वृक्ष को अच्छा नहीं बनाता, बल्कि अच्छा फल अच्छे वृक्ष का प्रमाण है। इसी प्रकार मसीही जीवन द्वारा प्रतिबिम्बित धार्मिकता प्रभु

यीशु की धार्मिकता को दर्शाती है, अर्थात् मसीह हममें (रोमि0 3:21–22)।

"जो पाप करता है वह शैतान से है, क्योंकि शैतान आरम्भ से ही पाप करता आया है। परमेश्वर का पुत्र इस अभिप्राय से प्रकट हुआ कि वह शैतान के कार्य को नष्ट करे" (प0यूह0 3:8)। इससे पहले के सातवें पद में हमने देखा कि धार्मिकतापूर्ण आचरण करने वाला विश्वासीजन धर्मी होता है और उसकी धार्मिकता का स्रोत **मसीह** है। यहां आठवें पद में यह कहा गया है कि "जो कोई पाप करता है, वह शैतान की ओर से है"। यशायाह नबी की पुस्तक के चौदहवें अध्याय के अनुसार, प्रभु परमेश्वर द्वारा सृजित स्वर्गदूतों में से सबसे सुन्दर एवं सबसे बुद्धिमान स्वर्गदूत (लूसिफर) अहंकार से भर गया। अपने अहंकार में फूल कर उसने स्वयं को "परम प्रधान (परमेश्वर) के तुल्य" बनाना चाहा। वह अपनी मनमर्जी के अनुसार चलना चाहा, परमेश्वर की अधीनता या अगुवाई में रहने के बजाय वह अपना मालिक खुद बनना चाहा। उसने किसी के आदेश, निर्देश या परामर्श को नहीं मानना चाहा। यही प्रवृति एवं नियत–भावना मनुष्य जाति में भर गई, जबकि अदन की वाटिका में शैतान (लूसिफर) ने हव्वा को अपने झूठ–फरेब में फंसाते हुए वर्जित फल खाने को कहा : "जिस दिन उस फल को खाओगे... परमेश्वर तुल्य हो जाओगे" (उत्प0 3:5)। आदम–हव्वा उस फल को खाकर परमेश्वर से विमुख हो गए। वे परमेश्वर से सिर्फ अलग ही नहीं हुए बल्कि शैतानी मनोवृत्ति के भी शिकार हुए : मनमानी करने के अभिलाषी, अपने मन के राजा होने के अभिलाषी तथा

दूसरों की अधीनता व अधिकार के प्रति विद्रोही भावना के अभिलाषी।

प्रभु के पास वापस आने पर, वह हमारे जीवन को ख्रीष्त–स्वभाव में ढालना चाहता है। विश्वासियों के जीवन के लिए प्रभु का यही उद्देश्य है; ताकि उनमें ख्रीष्त–स्वभाव विकसित हो, जैसा कि फिलिप्पियों की पत्री में लिखा है : "जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो; जिसने परमेश्वर के स्वरूप में होकर भी परमेश्वर के तुल्य होने को अपने वश में रखने की वस्तु न समझा" (फिलि0 2:5–6)।

लुसिफर तो परमेश्वर तुल्य बनना चाहा, जबकि मसीह यीशु ने ईश्वरीय महिमा का त्याग किया। लूसिफर ने किसी की अधीनता मानने के बजाय मनमौजी करना चाहा, जबकि वह (मसीह यीशु) अपनी इच्छा पूरी करने नहीं; बल्कि पिता (परमेश्वर) की इच्छा पूरी करने आया। यूहन्ना की पत्री के ऊपर लिखे आठवें पद में यह कहा गया है कि 'जो पाप करता है वह शैतान की ओर से है'। पाप की एक परिभाषा यह है : परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध किया गया काम। ऐसे कामों की जड़ लूसिफर के स्वभाव से निकलती है। अतः यूहन्ना कहता है कि जो कोई पाप करता है, वह शैतान की ओर से है। अर्थात् जब हम परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध कार्य–व्यवहार करते हैं तो लूसिफर की नीयत–भावना में चलते हैं, जो कि शारीरिकता है और इसका मूल स्रोत शैतान है। यूहन्ना की पत्री के इसी पद में बताया गया है कि "शैतान तो आरम्भ से ही पाप करता आया है"। इसी पद में आगे लिखा है :

"परमेश्वर का पुत्र इसलिए प्रकट हुआ कि शैतान के कामों का नाश करे"। मूल भाषा यूनानी में "नाश" करने का अर्थ है – निष्क्रिय करना, निष्प्रभावी करना, बिगाड़ देना व व्यर्थ ठहराना। यद्यपि मानवीय दृष्टि से यह ज्यादा अच्छा लगता कि शैतान के कामों का यीशु मसीह पूरी तरह से नामो–निशान मिटा देता; लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इसके बजाय प्रभु यीशु मसीह ने शैतान के काम (खेल) को बिगाड़ा और बर्बाद किया, और इस प्रकार लोगों के लिए पाप तथा पाप के कुपरिणामों से मुक्त होने का मार्ग खोल दिया।

"जो परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है, वह पाप नहीं करता, क्योंकि उसका बीज उसमें बना रहता है; और वह पाप नहीं कर सकता, क्योंकि वह परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है" (प0यूह0 3:9)। ऊपरी तौर पर इस पद की बात इस पत्री के पहले अध्याय के आठवें पद के विपरीत प्रतीत होती है – "यदि हम कहें कि हम में कुछ भी पाप नहीं, तो अपने आप को धोखा देते हैं"। यहां नौवें पद में यह कहता है कि "जो परमेश्वर से जन्मा है", वह पाप नहीं करता। तो क्या मसीही लोग पाप करते हैं? या पाप नहीं करते? नौवें पद पर और गहराई से विचार करें। यूहन्ना कहता है कि "परमेश्वर से जन्मा व्यक्ति पाप नहीं करता"। क्यों? जवाब में यूहन्ना यह लिखता है – "क्योंकि **उसका** बीज उसमें बना रहता है"। कहने का मतलब यह है कि हमारे जीवन में मसीह (के जीवन–स्वभाव) का पुनरुत्पादन हो रहा है। बाइबॅलीय मायने में ईश्वरपरायणता (भक्ति) का अर्थ यीशु की नकल करना नहीं है। ईश्वरभक्ति का अर्थ है

– विश्वासीजन में मसीह के जीवन–स्वभाव का पुनरुत्पादन।

अतः "जो कोई परमेश्वर से जन्मा है, वह पाप नहीं करता, क्योंकि **उसका** बीज (यीशु मसीह) उसमें बना रहता है" (उसमें पुनरुत्पादित हो रहा है)। नया जन्म पाने के समय हम में एक नया जीवन पैदा हुआ (दू0कुरि0 5:17)। मसीही विश्वासियों को यह नया जीवन प्राप्त है; अर्थात् वे परमेश्वर से जन्मे हैं। पहला कुरिन्थियों की पुस्तक के पहले अध्याय के तीसवें पद में यह लिखा है कि अब हम "मसीह में" स्थापित हैं एवं उसके आशिष–अधिकार को पाए हुए हैं। परमेश्वर की दृष्टि में अब हम "मसीह में" हैं। जब हम "मसीह में" प्राप्त अपने आत्मिक अधिकार–अवस्था को पहचानते हुए विश्वासपूर्वक उसमें बने रहते हैं, तब हमारे जीवन में ख्रीष्त–जीवन निर्मित (विकसित) होता है ओर तब हम नहीं, "मसीह मुझ में" जीवित रहता है। इस प्रकार, यदि हमारे जीवन में मसीह (का जीवन–स्वभाव) पुनरुत्पादित हो रहा है और हमारे जीवन में तथा हमारे जीवन द्वारा **वही** अपना जीवन जी रहा है, तो हम में पाप करते रहने की आदत नहीं होगी।

"इसी से परमेश्वर के संतान और शैतान के संतान जाने जाते हैं कि जो कोई धार्मिकता पर आचरण नहीं करता, वह परमेश्वर से नहीं, और वह भी नहीं जो अपने भाई से प्रेम नहीं करता" (प0यूह0 3:10)। हमारा जीवन–व्यवहार हमारे जीवन के आधार–स्रोत को प्रदर्शित करता है। कहने का मतलब यह है कि या तो हम शारीरिकता के अधीन होते हैं या फिर **आत्मा** के अधीन।

5

"इसी से परमेश्वर के संतान और शैतान के संतान जाने जाते हैं कि जो कोई धार्मिकता पर आचरण नहीं करता, वह परमेश्वर से नहीं, और वह भी नहीं जो अपने भाई से प्रेम नहीं करता" (प0यूह0 3:10)। प्रभु के विश्वासियों का धार्मिकता का जीवन उनके नया जन्म का तथा आत्मा के चलाए चलने का प्रमाण होता है। इससे पहले यूहन्ना ने अपनी इस पत्री के पहले अध्याय में यह कहा कि ज्योति में चलने वाले ही परमेश्वर की सहभागिता में होते हैं। इस पत्री के दूसरे अध्याय में उसने यह बताया कि जो परमेश्वर को जानते हैं और ज्योति में चलते हैं, वे उसकी आज्ञाओं को मानते हैं, मसीह के जीवन (स्वभाव) के अनुसार जीवन बिताते हैं और सह–विश्वासियों से प्रेम रखते हैं (प0यूह0 2:3–6,9,10)।

मसीही विश्वासियों का एक दूसरे से प्रेम रखना बहुत महत्वपूर्ण है। इसके बारे में यूहन्ना ने अपनी इस पत्री के दूसरे, तीसरे और चौथे अध्याय में भी जोर दिया है। एक दूसरे के प्रति विश्वासियों का प्रेम प्राकृतिक (स्वाभाविक) प्रेम नहीं है, बल्कि सच्चे विश्वासियों में प्रवाहित परमेश्वर–पदत्त (ईश्वरीय) प्रेम होता है। उद्धार–विहीन लोग तथा शारीरिक मसीही, इस ईश्वरीय प्रेम से, दूसरों को प्रेम नहीं कर सकते। इसके विपरीत **आत्मा** के चलाए चलने वाले आध्यात्मिक मसीही (विश्वासी)

इस ईश्वरीय प्रेम से दूसरों को प्रेम कर सकते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि **आत्मा** के फलों में से एक प्रमुख फल "प्रेम" है (गला0 5:22)।

परमेश्वर के लोगों को पवित्र आत्मा द्वारा विभिन्न वरदान या योग्यताएं दी गई हैं। बहरहाल, इन वरदानों अथवा योग्यताओं के बावजूद, प्रत्येक विश्वासी को परमेश्वर–प्रदत्त प्रेम से एक–दूसरे को प्रेम करना है, जैसे कि **उसने** हमसे प्रेम किया। कुरिन्थुस के विश्वासियों को लिखते हुए पौलुस ने उन्हें यह समझाया कि प्रेम सर्वोपरि है (प0कुरि0 13)।

"क्योंकि जो समाचार तुमने आरम्भ से सुना वह यह है कि हम एक दूसरे से प्रेम करें" (प0यूह0 3:11)। प्रभु के प्रेरितों ने अपनी सुसमाचार सेवा के प्रारम्भ से ही ईश्वरीय प्रेम के महत्व पर बल दिया। प्रभु यीशु ने उन्हें एक दूसरे से प्रेम रखने की शिक्षा दी थी और इस प्रेम को ही उसकी शिष्यता का प्रमाण बताया था (यूह0 13:34–35)।

"कैन के समान नहीं, जो उस दुष्ट से था, और जिसने अपने भाई की हत्या की। उसने किस कारण से उसकी हत्या की? उसके कर्म तो दुष्ट और उसके भाई के कर्म धार्मिकता के थे" (प0यूह0 3:12)। कैन के काम ने उसे बुरा नहीं बनाया, बल्कि वह बुरा था, इसलिए उसने हत्या रूपी पाप किया। मसीही होते हुए भी, हमारा जीवन–आचरण इस बात पर आधारित है कि हम **आत्मा** के चलाए चल रहे हैं, या शारीरिकता के अधीन। यदि हम शारीरिकता के चलाए चलेंगे तो हमारे दैनिक जीवन में बुरे

विचारों एवं अशोभनीय विचारों का बोलबाला होगा। इसके विपरीत **आत्मा** के चलाए चलने पर हमारे जीवन से आत्मा के फल प्रकट होंगे (गला0 5:19–23)।

"भाईयों, यदि संसार तुमसे घृणा करता है तो आश्चर्य न करना" (प0यूह0 3:13)। हे मसीही भाई–बहनों, यदि संसार हमसे नफरत करता है तो हमें आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए। प्रभु यीशु ने भी अपने शिष्यों को यही चेतावनी दी थी। अपने शिष्यों को एक दूसरे से प्रेम रखने की आज्ञा देने के बाद (यूह0 15:18–19), उसने उन्हें यह चेतावनी भी दी थी कि संसार के लोग उनसे नफरत करेंगे। यहां यह भी स्मरण रखना है कि संसार का मतलब संसारिकता अर्थात् परमेश्वर–विरुद्ध संसारिक तौर–तरीके व संसारिक पद्धतियां। संसार **उसके** विश्वासियों से नफरत करता है। संसारिक लोग तो यह चाहेंगे कि मसीही लोग भी उन्हीं की तरह हो जाएं।

चूंकि ख्रीष्तीय विश्वासी संसारिक जन से भिन्न होता है, इसलिए संसार उससे नफरत करता है (प0पत0 4:3–4)। जो लोग परमेश्वर के लिए जीवन व्यतीत करते हैं, उनके प्रति अविश्वासियों की प्रतिक्रिया क्यों इतनी नकारात्मक (अस्वीकारात्मक) होती है? कारण वही है जिनकी वजह से कैन ने अपने भाई की हत्या करनी चाही। परमेश्वर के सच्चे विश्वासियों का जीवन, अविश्वासियों में वर्तमान जिन्दगी के बारे में बेचैनी पैदा करता है। प्रभु के लोगों का जीवन–आचरण, ज्योति के समान अविश्वासियों के जीवन की अशुद्धता को बेपर्द करता है, जिससे उनमें दोष–भावना व लज्जा पैदा होती है और नतीजतन

नकारात्मक प्रतिक्रिया। मसीही विश्वासियों का जीवन, अविश्वासियों में भविष्य के बारे में भी बेचैनी पैदा करता है। अविश्वासी लोग भविष्य के बारे में या इस जीवन के बाद के जीवन के बारे में सोचना पसन्द नहीं करते। इस प्रकार भय और संदेह के मारे मसीहियों का विरोध करते हैं (यूह0 15:18–21; रोमि0 8:7)।

"हम जानते हैं कि हम मृत्यु से पार होकर जीवन में आ पहुंचे हैं, क्योंकि हम भाईयों से प्रेम रखते हैं। वह जो प्रेम नहीं रखता मृत्यु में बना रहता है" (प0यूह0 3:14)। रोचक है कि प्रेरित यूहन्ना पहले विश्वासियों से यह कहता है कि संसार उनसे नफरत करेगा, तत्पश्चात् उसने उन्हें एक–दूसरे से प्रेम करने की शिक्षा दी। मसीही विश्वासी का अपने सह–विश्वासी के प्रति (परमेश्वर–प्रदत्त) प्रेम इस सच्चाई का प्रमाण है कि विश्वासीजन मृत्यु से जीवन में प्रवेश कर चुका है। स्मरण रहे कि हमारा प्रेम हमारे लिए अनन्त जीवन नहीं कमाता, बल्कि हमारा प्रेम इस बात का प्रमाण है कि हमें अनन्त जीवन मिल चुका है। इस पद के गम्भीर मायने–मतलब पर ध्यान दें। जो अपने भाई से प्रेम नहीं रखता वह शारीरिकता (मृत्यु) में जी रहा (बना हुआ) है।

"प्रत्येक जो अपने भाई से घृणा करता है, वह हत्यारा है; और तुम जानते हो कि किसी हत्यारे में अनन्त जीवन वास नहीं करता" (प0यूह0 3:15)। यदि विश्वासीजन अन्य किसी विश्वासी से नफरत करता है, तो आन्तरिक तौर पर एक हत्यारे के समान है। ऐसा मसीही मानो अन्य किसी मसीही की मौत की कामना करता है। परमेश्वर की

दृष्टि में, हमारी आन्तरिक नियत–भावना हमारे बाहरी कर्म की तरह होती है (मत्ती 5:21–22)। यूहन्ना अपनी इस पत्री के अन्त में उपर्युक्त पद में यह लिखता है : "तुम जानते हो कि किसी हत्यारे में अनन्त जीवन वास नहीं करता"। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि किसी हत्यारे (अपने विश्वासी भाई से बैर रखने वाले) में मसीह यीशु का जीवन वास नहीं करता। मसीही विश्वासी के जीवन में पवित्र आत्मा ख्रीष्त यीशु का जीवन–स्वभाव पुनरुत्पादित कर रहा है। ऐसे विश्वासी के जीवन में अपने अन्य किसी विश्वासी से बैर रखने की भावना ख्रीष्त (ख्रीष्त–जीवन) की देन नहीं हो सकती।

"हम प्रेम को इसी से जानते हैं, कि उसने हमारे लिए अपना प्राण दे दिया। अतः हमें भी भाईयों के लिए अपना प्राण देना चाहिए" (प0यूह0 3:16)। सच्चे प्रेम की परिभाषा समझने के लिए प्रभु यीशु के जीवन उदाहरण पर दृष्टि डालना आवश्यक है। उसने अपना जीवन सबके लिए अर्पित कर दिया। प्रभु यीशु का उदाहरण यह दर्शाता है कि सच्चा प्रेम स्वार्थ के प्रति मरा होता है। यहां यह भी याद रखना चाहिए कि वास्तविक 'स्वार्थ–त्याग, अहं–त्याग या अपने आपे से इनकार करना' हमारी अपनी शक्ति–सामर्थ्य में संभव नहीं है। लूका 9:23 में प्रभु के ये वचन पाए जाते हैं : "यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो वह स्वयं अपना इनकार करे"। हममें से अधिकतर लोग स्वार्थ–त्याग की कसरत करके फेल हो चुके हैं। परन्तु लूका अपने सुसमाचार में उपचार बताता है – 'प्रतिदिन उसका क्रूस उठाना'। अर्थात् मसीह के साथ हमारे पुराने पाप–स्वभाव

के सह–क्रूसित किए जाने की सच्चाई को जानना–मानना तथा उस पर विश्वास–विश्राम करते हुए प्रभु पर आशा–भरोसा रखना। इस सच्चाई के ज्ञान–पहचान एवं इस पर विश्वास–विश्राम के आधार पर ही हम अपने आपे का इनकार कर सकते हैं, स्वार्थ के प्रति मर सकते हैं तथा प्रभु का अनुसरण कर सकते हैं और एक दूसरे के लिए अपना जीवन न्योछावर कर सकते हैं (रोमि0 6:6)।

"परन्तु जिस किसी के पास इस संसार की सम्पत्ति है और वह अपने भाई को आवश्यकता में देख कर भी उसके प्रति अपना हृदय कठोर कर लेता है तो उसमें परमेश्वर का प्रेम कैसे बना रह सकता है? बच्चों, हम कथन अथवा जीभ से नहीं, वरन् कार्य तथा सत्य द्वारा भी प्रेम करें" (प0यूह0 3:17–18)। इन पदों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि प्रभु अपने विश्वासियों में एक दूसरे के प्रति कैसे स्वार्थरहित एवं त्यागपूर्ण व्यवहार देखना चाहता है। यह बात याकूब की पत्री के दूसरे अध्याय के सत्रहवें–अट्ठारहवें पद के अनुकूल है। जब विश्वासी के जीवन में प्रभु यीशु अपना जीवन (स्वभाव) प्रकट करता है, तब विश्वासीगण परमेश्वर के प्रेम से दूसरों के प्रति प्रेमपूर्ण सेवा प्रदान करते हैं; और अपनी आवश्यकताओं की अपेक्षा दूसरों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देते हैं (फिलि0 2:3–4)। वैसे तो कोई भी आत्मा के चलाए चलने की बात कर सकता है, लेकिन यदि ऐसे व्यक्ति का जीवन–व्यवहार स्वार्थपूर्ण एवं संसारिक है, तो उसकी बातों और उपदेशों से क्या फायदा? वास्तविकता यह है कि यदि मसीह यीशु का जीवन ही हमारे जीवन का स्रोत एवं आधार है, तो दूसरों

के प्रति हमारा जीवन–व्यवहार प्रेमपूर्ण होगा (दू0कुरि0 5:14–15)।

"इसी से हम जानेंगे कि हम सत्य के हैं और हम उसके सम्मुख उन बातों में अपने हृदयों को आश्वस्त कर सकेंगे, जिन बातों में हमारा हृदय हमें दोषी ठहराता है; क्योंकि परमेश्वर हमारे हृदय की अपेक्षा कहीं महान है और वह सब कुछ जानता है" (प0यूह0 3:19–20)। ख्रीष्तीय जीवन–मार्ग पर हम जैसे–जैसे बढ़ेंगे, हमारा मन (या विवेक) हम पर दोष लगाएगा। यह दोष–भावना पवित्र आत्मा की ओर से आ सकती है, या फिर शारीरिकता के माध्यम से "भाईयों पर दोष लगाने वाले" की ओर से। इससे हम व्याकुल या चिन्तित हो सकते हैं। परन्तु इस प्रसंग में प्रेरित यूहन्ना की इस बात पर ध्याने दें कि "परमेश्वर हमारे मन से बड़ा" है। प्रभु का दास यूहन्ना यह समझाता रहा है कि विश्वासियों के लिए दोष–भावना से ग्रसित होना कोई असामान्य बात नहीं है। बेशक, परमेश्वर की यह पावन इच्छा व योजना है कि विश्वासी लोगों में मसीह के प्रेम जैसा परस्पर प्रेम पाया जाय। लेकिन संभव है कि कोई विश्वासी किसी दूसरे विश्वासी भाई–बहन को सच्चे प्रेम से प्रेम न कर रहा हो, और इस प्रकार अपने आत्मिक जीवन में पराजय व पाखंडीपन की दोष–भावना से ग्रसित हो जाता हो। इस प्रकार की दोष–भावना का समाधान इस सच्चाई को स्मरण रखने में है कि **परमेश्वर हमारे मन से** बहुत **बड़ा** है। कहने का मतलब यह है कि विश्वासीजन में शारीरिकतापूर्ण दुर्बलताओं एवं असंतुलन के बावजूद, प्रभु परमेश्वर इस वास्तविकता को भली–भांति

जानता है कि सच्चा मसीही अपनी अन्तरात्मा में (सचमुच) प्रभु की इच्छा–योजना का अनुसरण करने का आकांक्षी होता है। इस पद की खास बात यह है कि प्रभु के जन को अनावश्यक तौर से अपने (दोषी) मन को कठोरता, कष्ट या पीड़ा का शिकार नहीं होने देना चाहिए। अपनी असफलता, पराजय या दोष–भावना पर मन लगाने के बजाय हमें अपनी दृष्टि प्रभु परमेश्वर पर लगानी चाहिए। प्रभु परमेश्वर विश्वासीजन की इस आंतरिक आकांक्षा से सुपरिचित है कि वह (विश्वासीजन) परमेश्वर की इच्छा–योजना का विरोधी नहीं है, और अपनी सुइच्छा के अनुसार परमेश्वर ही विश्वासियों के मन में इच्छा और कार्य, दोनों को करने का प्रभाव डालता है (फिलि0 2:13)।

"प्रियों, यदि हमारा हृदय हमें दोषी न ठहराए, तो परमेश्वर के सम्मुख हमें साहस होता है" (प0यूह0 3:21)। दोष–भावना से ग्रसित एवं परमेश्वर के समक्ष अपनी अवस्था के प्रति अनिश्चित विश्वासीगण परमेश्वर के समीप नहीं आना चाहते। ऐसे लोग उसकी उपस्थिति से दूर भागते हैं (यूह0 3:20)। सत्य के प्रति आश्वस्त एवं सुनिश्चित होने पर विश्वासीजन हियाव के साथ परमेश्वर के समीप आ सकता है। पौलुस ने तीमुथियुस को सिर्फ विश्वास एवं शुद्ध विवेक के साथ आध्यात्मिक संग्राम में लगे रहने के लिए प्रोत्साहित किया (प0तीमु0 1:18–19)। विश्वास और भले विवेक का आपस में गहरा सम्बन्ध है। यदि हमारा विवेक शुद्ध नहीं है तो हमारा विश्वास दुर्बल होने लगता है। परन्तु मसीह के लहू पर विश्वास हम में शुद्ध विवेक पैदा करता है। इब्रानियों की पत्री के दसवें

अध्याय के उन्नीसवें पद के अनुसार मसीह के लहू के माध्यम से हम अनुग्रह के सिंहासन के पास हियाव से जा सकते है। इस प्रकार जब हम इस सच्चाई को मानते हुए विश्वास–विश्राम करते है कि मसीह के लहू ने हमें हमारे सारे अधर्म से शुद्ध कर दिया है, तब हमारा विवेक शुद्ध रहता है और हम साहस एवं भरोसे के साथ प्रभु के पास आते हैं।

"और जो कुछ हम मांगते हैं, उस से पाते हैं, क्योंकि हम उसकी आज्ञाओं का पालन करते और वे ही कार्य करते हैं जो उसकी दृष्टि में प्रिय हैं" (प0यूह0 3:22)। इन शब्दों का भावार्थ यह है कि जब विश्वासीजन परमेश्वर की आज्ञाओं को मानते हुए उसकी भली–भावती इच्छा के अनुसार कार्य–व्यवहार करता है तो पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करता है। जब हम आत्मा के चलाए चलते हैं और मसीह के जीवन–स्वभाव में ढलते जाते हैं, तब परमेश्वर की इच्छा एवं उसका उद्देश्य हमारी इच्छा–योजना हो जाते हैं। इस प्रकार, हमारी विनती का परमेश्वर की ओर से उत्तर मिलना सहज हो जाता है, क्योंकि तब (आत्मा के अधीन) हमारी विनती–प्रार्थना ईश्वरीय इच्छा–योजना के अनुकूल होती है। शारीरिकता के अनुसार जीवन बिताने वाले विश्वासीजन का जीवन–अनुभव इसका उल्टा होगा; क्योंकि शारीरिकजन सिर्फ स्वार्थ–सिद्धि चाहता है। ऐसा जन परमेश्वर से सिर्फ अपने स्वार्थ–सिद्धि के लिए विनती करता है।

"उसकी आज्ञा यह है कि हम उसके पुत्र यीशु मसीह के नाम पर विश्वास करें और एक दूसरे से ठीक

वैसा ही प्रेम करें जैसी कि उसने हमें आज्ञा दी है" (प0यूह0 3:23)। अपनी संतानों से प्रभु परमेश्वर यह चाहता है कि "हम उसके पुत्र यीशु मसीह के नाम पर विश्वास करें"। सिर्फ यह विश्वास नहीं करना है कि वह हमारे वास्ते क्रूस पर मर गया, बल्कि उसके साथ हमें अपने पुराने मनुष्यत्व के सह–क्रूसित होने तथा नये जीवन के लिए उसके साथ पुनः जीवित हो उठने की आध्यात्मिक सच्चाई को भी मानना है। हमें विश्वास के साथ दिन–प्रतिदिन तथा क्षण–प्रतिक्षण मसीह यीशु की ओर ही, इस समझ के साथ, दृष्टि लगाए रहना है कि उसके तथा उसके द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य बगैर हम कुछ नहीं हैं (यूह0 15:1–5; कुलु0 2:6–10)। हम अपने जीवन में प्रेम या **आत्मा** के फल उत्पन्न नहीं कर सकते, परन्तु जब हम **आत्मा** में चलते हैं तब उसके फल हमारे जीवन में प्रकट होने लगते हैं।

"जो उसकी आज्ञाओं का पालन करता है, वह परमेश्वर में बना रहता है, और वह उसमें। और इसी से, अर्थात् उस आत्मा से जिसे उसने हमें दिया है, हम जानते हैं कि वह हम में बना रहता है" (प0यूह0 3:24)। प्रेरित यूहन्ना पुनः यह स्पष्ट करता है कि मसीह के साथ अपनी पहचान व एकता में बने रहने से तथा मसीह द्वारा हमारे जीवन में ख्रीष्त–स्वभाव पुनरुत्पादित किए जाने से ही हम उसके वचन के पालन में समर्थ होते हैं। परमेश्वर–प्रदत्त पवित्र आत्मा के द्वारा ही हमें यह ज्ञान (सुनिश्चयता) होता है कि "वह हम में बना रहता" है। स्मरण रहे कि हमारे जीवन में ख्रीष्त–जीवन पवित्र आत्मा के द्वारा ही निर्मित (पुनरुत्पादित) किया जाता है (दू0कुरि0 3:18)।

6

"प्रियों, प्रत्येक आत्मा की प्रतीति न करो, परन्तु आत्माओं को परखो कि वे परमेश्वर की ओर से हैं या नहीं; क्योंकि संसार में अनेक झूठे नबी निकल पड़े हैं" (प0यूह0 4:1)। दूसरा पतरस के दूसरे अध्याय के पहले पद में यह लिखा है : "परन्तु उन लोगों के मध्य झूठे नबी भी उठ खड़े हुए जैसा कि तुम्हारे मध्य भी झूठे उपदेशक होंगे जो गुप्त रूप से घातक और विधर्मी शिक्षा का प्रचार करेंगे, यहां तक कि उस स्वामी को भी अस्वीकार करेंगे जिसने उन्हें मोल लिया है, और इस प्रकार वे शीघ्र ही अपने ऊपर विनाश ले आएंगे"। अब पहला यूहन्ना के इस पद की बात पर ध्यान दें : "प्रत्येक आत्मा की प्रतीति न करो, परन्तु आत्माओं को परखो कि वे परमेश्वर की ओर से हैं या नहीं" (पवित्र आत्मा है, या हमारी शारीरिकता?)। अतः यूहन्ना हमें सलाह देता है कि "आत्माओं को परखो कि वे परमेश्वर की ओर से हैं" (कहीं ऐसा तो नहीं कि शारीरिकता की ओर से हैं?), "क्योंकि संसार में अनेक झूठे नबी निकल पड़े हैं"।

"परमेश्वर के आत्मा को तुम इस से जान सकते हो : प्रत्येक आत्मा जो यह मानती है कि यीशु मसीह देह–धारण कर के आया है, वह परमेश्वर की ओर से है; और प्रत्येक आत्मा जो यीशु को नहीं मानती वह परमेश्वर की ओर से नहीं है; यही तो मसीही–विरोधी की आत्मा है,

जिसके विषय में तुम सुन चुके हो कि वह आने वाला है और अब भी संसार में है" (प0यूह0 4:2–3)। प्रभु का दास यूहन्ना अपने पाठकों को स्मरण दिलाता है कि जो मसीह के बारे में झूठी शिक्षा देते हैं, वे ख्रीष्त–विरोधी हैं। ऐसे लोग प्रभु यीशु के प्रचारक नहीं बल्कि उसके विरोधी होते हैं (प0यूह0 2:18–19)।

"बच्चों, तुम परमेश्वर से हो और तुम उन पर विजयी हुए हो; क्योंकि वह जो तुम में है, उस से जो संसार में है, कहीं बढ़ कर है" (प0यूह0 4:4)। मसीही विश्वासी लोग नया जन्म द्वारा परमेश्वर के घराने के हो गए हैं और उनमें परमेश्वर का आत्मा वास करता है; जो कि शैतान से बहुत अधिक महान है। इसलिए संसारिक तौर–तरीकों से कम पढ़ा–लिखा (सच्चा) विश्वासी भी झूठे शिक्षकों का सामना करने में समर्थ होता है (प्रेरि0 4:13)। ध्यान दें, विश्वासियों के लिए झूठे शिक्षकों से लड़ाई करना जरूरी नहीं है। इसके बजाय, उन्हें पहचानने पर उनकी शिक्षाओं को मानने से इनकार करके हम उन्हें पराजित कर सकते हैं। बहरहाल, यह विजय हमारे घमंड करने अथवा हमारी नाम कमाई के लिए नहीं है। यह विजय हमें इसलिए मिलती है क्योंकि हम में पवित्र आत्मा वास करता है (अपना काम करता है)। "क्योंकि जो हम में है वह, उससे जो संसार में है (बहुत) बड़ा है" (प0यूह0 2:20,26,27; प0कुरि0 1:18–29; 2:6–16)।

"वे संसार के हैं, इसलिए संसार की बातें बोलते हैं, और संसार उनकी सुनता है" (प0यूह0 4:5)। "वे" अर्थात्

झूठे शिक्षक, ख्रीष्त–विरोधी, इस संसार के हैं, परमेश्वर के नहीं। जैसा कि इससे पहले भी कहा जा चुका है, "संसार" से तात्पर्य संसारिक तौर–तरीकों से है, जो लोभ–लालच व सत्ता–शक्ति जैसे शैतानी सिद्धान्तों पर आधारित है। संसारिक तौर–तरीके सच्चे परमेश्वर का विरोध करते हैं। अतः इस पद की बात को इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है : "झूठे शिक्षक संसारी हैं। इसलिए वे संसारिक दृष्टिकोण से बोलते हैं, और संसारिक लोग उनकी बात मानते हैं"। इसलिए परमेश्वर के वचन की विश्वसनीय शिक्षा देने वाले मसीही इस संसार की लोकप्रियता–प्रतियोगिता नहीं जीत सकते। इसके विपरीत, इस संसार के अविश्वासियों द्वारा झूठे शिक्षकों का बड़े धूमधाम से स्वागत किया जाता है। इस संसार के शिक्षित, परिष्कृत लोगों को इस दुनिया से परे से आने वाले मसीह अर्थात् देहधारी परमेश्वर का सुसमाचार मूर्खता प्रतीत होता है। ऐसे संसारी, ज्ञानवान् लोगों को क्रूस पर मसीह का बलिदान ही उद्धार का एकमात्र मार्ग, ठोकर का कारण एवं संकीर्ण विचार प्रतीत होता है। ऐसे लोगों को सुसमाचार सुनाते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि ये लोग ईश्वरीय सत्य के प्रति अंधे हैं और इस संसार के देवता ने उन्हें अपना गुलाम बना रखा है (दू0कुरि0 4:4)।

"हम परमेश्वर से हैं, वह जो परमेश्वर को जानता है, हमारी सुनता है; और जो परमेश्वर से नहीं, हमारी नहीं सुनता। इसी से हम सत्य की आत्मा और भ्रान्ति की आत्मा को पहचानते हैं" (प0यूह0 4:6)। प्रभु के प्रेरितों द्वारा दी गई सत्य–शिक्षा को केवल वही लोग सुन–समझ सकते हैं

जो पवित्र आत्मा द्वारा "नया जन्म" पाए हैं और पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन बिताते हैं (यूह0 10:24–28; प0कुरि0 2:12–13)। सत्य और असत्य को जानने–पहचानने का पैमाना यह है कि जो कुछ प्रेरितों द्वारा लिखित शिक्षा के अनुसार है वह सत्य एवं विश्वसनीय है; और जो कुछ इससे भिन्न है या जिसमें जोड़ा–घटाया गया है वह अविश्वसनीय (झूठा) है।

"प्रियों, हम आपस में प्रेम करें, क्योंकि प्रेम परमेश्वर से है। प्रत्येक जो प्रेम करता है, परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है और परमेश्वर को जानता है" (प0यूह0 4:7)। यहां यूहन्ना पुनः प्रेम की बात करता है। वह मसीही विश्वासियों को पुनः एक–दूसरे से प्रेम करने में बढ़ते रहने का प्रोत्साहन देता है। इस सम्बन्ध में रोचक तथ्य यह है कि परमेश्वर ही समस्त सच्चे प्रेम का स्रोत है; अतएव प्रेम परमेश्वर से है। ध्यान रहे, सच्चा बाइबॅलीय प्रेम संसारिक, स्वाभाविक अथवा मानुषिक नहीं है। कहने का मतलब यह है कि यह प्रेम प्राकृतिक मनुष्य की देन नहीं है। ऐसा प्रेम, मनुष्य में जन्मजात नहीं पाया जाता, और न ही ऐसे प्रेम को कहीं से सीखा जा सकता है। यूहन्ना कहता है : "जो कोई प्रेम करता है, वह परमेश्वर से जन्मा है"। जो लोग सच्चा **नया जन्म** पाए हैं, केवल उन्हीं में यह ईश्वरीय प्रेम पाया जाता है। इसीलिए यूहन्ना यह भी कह देता है कि "जो कोई प्रेम करता है... परमेश्वर को जानता है"। यह पवित्र आत्मा प्रदत्त ईश्वरीय ज्ञान में विकास की बात है। यूहन्ना की इसी पत्री के इसी अध्याय के उन्नीसवें पद में यह लिखा है : "हम इसलिए प्रेम करते हैं कि उसने पहिले

हम से प्रेम किया"। विश्वासीजन जितना अधिक परमेश्वर के ज्ञान में बढ़ता है, उतना ही अधिक अपने प्रति परमेश्वर के प्रेम की महानता को पहचानने लगता है; नतीजतन, परमेश्वर के प्रति प्रेम में और अपने सह–विश्वासियों के प्रति प्रेम में बढ़ता जाता है। इसी बात को यूं कह सकते हैं कि जो कोई ऐसा प्रेम करता है, उसने मसीह द्वारा पूर्ण किए गये उद्धार के ज्ञान को पा लिया है और मसीह में सुस्थिर (बना हुआ) है।

"वह जो प्रेम नहीं करता परमेश्वर को नहीं जानता, क्योंकि परमेश्वर प्रेम है" (प0यूह0 4:8)। इससे पूर्व यूहन्ना ने परमेश्वर के स्वभाव को जीवन एवं ज्योति के रूप में परिभाषित किया था, और अब वह परमेश्वर को प्रेम कहता है। जिस किसी में परमेश्वर वास करता है, वह व्यक्ति परमेश्वर के स्वभाव को प्रतिबिम्बित करता है। परमेश्वर का सच्चा ज्ञान रखने का दावा करना, और दूसरों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार नहीं करना, झूठा दावा है। यह उसी प्रकार झूठा दावा है जैसे कि ज्योतिर्मय परमेश्वर को जानने का दावा करना, किन्तु अंधकार में विचरण करना। बाइबॅलीय प्रेम (परमेश्वर के समान) पवित्र, धर्मी एवं सिद्ध है। परमेश्वर का सच्चा ज्ञान रखने वाले, उसके समान प्रेम करते हैं। आठवें पद के अंत में यूहन्ना यह कहता है : "परमेश्वर प्रेम है"। यह प्रेम परमेश्वर का स्वभाव–तत्व है। प्रेम परमेश्वर के तमाम कार्यों में से एक नहीं है; बल्कि परमेश्वर की समस्त गतिविधियां प्रेमपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए : उसकी शिक्षा, ताड़ना अथवा अनुशासनात्मक कार्यवाही भी प्रेमपूर्ण होती है। चूंकि वह प्रेम है इसलिए

अनुशासित करता है व शिक्षा (ताड़ना) देता है। चूंकि वह प्रेम है, इसलिए वह कोई भी कार्य प्रेम बगैर नहीं करता। परमेश्वर के प्रेम को समझने में अगले पद की बातें भी सहायक हैं।

"परमेश्वर का प्रेम हम में इसी से प्रकट हुआ कि परमेश्वर ने अपने एकलौते पुत्र को संसार में भेज दिया कि हम उसके द्वारा जीवन पाएं" (प0यूह0 4:9)। यह पद उसी अद्‌भुत सत्य को दर्शाता है जो यूहन्ना के सुसमाचार के तीसरे अध्याय के सोलहवें पद में लिपिबद्ध है। यह सुसमाचार का संक्षिप्त एवं आधारभूत संदेश है। पिता परमेश्वर ने अपने एकलौते पुत्र को इस संसार में भेज कर हमारे प्रति अपने असीम प्रेम का प्रकटन किया, ताकि उसके द्वारा हमें अनन्त जीवन मिल सके। परमेश्वर के प्रेम का महान प्रमाण यह है कि उसने अपने एकलौते पुत्र को भेज दिया, जो कि जीवन है, ताकि हम परमेश्वर के अनुग्रह से विश्वास द्वारा ख्रीष्त जीवन जी सकें।

"प्रेम इस में नहीं कि हमने परमेश्वर से प्रेम किया, परन्तु इसमें है कि उसने हमसे प्रेम किया और हमारे पापों के प्रायश्चित के लिए अपने पुत्र को भेजा" (प0यूह0 4:10)। प्रभु परमेश्वर ने अपने प्रेम को **मृत्यु** में प्रकट किया। उसने अपने एकलौते पुत्र को बलिदान होने के लिए भेज दिया। "प्रेम इसमें नहीं कि हमने परमेश्वर से प्रेम किया, परन्तु इसमें है कि उसने हमसे प्रेम किया और हमारे पापों के प्रायश्चित के लिए अपने पुत्र को भेजा"। यह पद शर्तविहीन प्रेम का वर्णन करता है — करुणा से भरपूर प्रेम,

स्वार्थरहित प्रेम। यह प्रेम केवल परमेश्वर के स्वभाव में निहित है, जिसकी प्रेरणा में उसने हम अपात्र लोगों (पापियों) के बदले मरने के लिए अपने एकलौते पुत्र को भेज दिया। यूहन्ना के शब्दों पर पुनः ध्यान दें – "प्रेम इसमें नहीं कि हमने परमेश्वर से प्रेम किया, परन्तु इसमें है कि **उसने** हमसे प्रेम किया"। इस अद्‌भुत प्रेम–सम्बन्ध की पहल स्वयं प्रभु परमेश्वर ने की है। इसमें मनुष्य का कोई योगदान नहीं है; और मनुष्य के लिए ऐसा कुछ करना असम्भव था, क्योंकि पवित्र बाइबॅल के अनुसार सब मनुष्य सच्चे परमेश्वर के प्रति मृतक (पापी) अवस्था में पैदा होते हैं। इफिसियों की पत्री में लिखा हुआ है कि हम सब "अपने अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे"। हम पिता परमेश्वर की संगति–सहभागिता से अलग थे। यद्यपि हम उसके पावन प्रेम के पूर्णरूपेण अपात्र थे, तथापि उसने हमसे प्रेम किया। उसने हमसे इतना अधिक प्रेम किया कि अपने एकलौते पुत्र को हमारे पापों के बदले प्रायश्चित स्वरूप बलिदान होने के लिए भेज दिया। महापवित्र परमेश्वर के अद्‌भुत प्रेम का महानतम् प्रदर्शन तब हुआ जबकि उसने अपने पुत्र को हम सबके पापों के बदले मरने भेज दिया। कभी–कभी प्रेमी युगल एक दूसरे से यह पूछते हैं कि किसने पहले प्रेम करना प्रारम्भ किया। बहरहाल, हमारे प्रति ईश्वरीय प्रेम के बारे में बात बिल्कुल साफ है – परमेश्वर ने ही हमारे प्रति प्रेम की पहल की; उसी ने पहले प्रेम किया। शुरुआत हमने नहीं की, और न ही हम उसके प्रेम के लायक थे। वास्तविकता यह है कि हम तो बिल्कुल नालायक थे। हम उसके प्रेम के पात्र थे ही नहीं। इसीलिए

पौलुस ने रोमियों की पत्री के पांचवें अध्याय के आठवें पद में यह लिखा है : "जब हम पापी ही थे, तभी मसीह हमारे लिए मरा"। परमेश्वर की कृपा व दया–दृष्टि अर्थात् उसके अनुग्रह का रहस्य यही है। प्रभु परमेश्वर ने विद्रोही मानव जाति को प्रेम किया; और मसीही विश्वासियों को इस संसार में इसी प्रकार का प्रेम दर्शाने की बुलाहट मिली है। यह प्रेम, बुराई के पीछे भागने वालों (पापियों) का तब तक पीछा करता रहता है, जब तक कि वे अपनी दौड़–भाग बन्द नहीं कर देते, अर्थात् जब तक कि वे थकित नहीं हो जाते, और तब यह प्रेम उन्हें आशीषित करता है।

"प्रियों, यदि परमेश्वर ने हमसे ऐसा प्रेम किया तो हमको भी एक दूसरे से प्रेम करना चाहिए" (प0यूह0 4:11)। चूंकि विश्वासीजन "परमेश्वर से जन्मा" है, इसलिए उसमें परमेश्वर का प्रेमपूर्ण स्वभाव प्रतिबिम्बित होना चाहिए। जैसे–जैसे हम अपने प्रति परमेश्वर के प्रेम की समझ में उन्नति करते हैं, वैसे–वैसे परमेश्वर तथा दूसरों के प्रति हमारा प्रेम भी बढ़ता है। दूसरा कुरिन्थियों 5:14 में लिखा है : "मसीह का प्रेम हमें विवश कर देता है"। इफिसियों 3:17–19 में यह लिखा है : "और विश्वास के द्वारा मसीह तुम्हारे हृदय में निवास करे कि तुम प्रेम में नींव डाल कर और जड़ पकड़ कर, सब पवित्र लोगों के साथ भली–भांति समझ सको कि उसकी चौड़ाई, लम्बाई, ऊंचाई और गहराई कितनी है, और मसीह के उस प्रेम को जान सको जो ज्ञान से परे है, कि तुम परमेश्वर की समस्त परिपूर्णता तक भरपूर हो जाओ"। भावार्थ यह है कि जैसे–जैसे परमेश्वर के त्यागपूर्ण, स्वार्थरहित, सिद्ध एवं शर्त–विहीन

प्रेम की पहचान में हम प्रगति करते हैं, वैसे–वैसे उसे प्रेम करने तथा दूसरों को भी प्रेम करने की प्रेरणा से नियंत्रित होते जाते हैं।

"परमेश्वर को कभी किसी ने नहीं देखा, यदि हम एक दूसरे से प्रेम करें तो परमेश्वर हम में बना रहता है, और उसका प्रेम हम में सिद्ध होता है" (प0यूह0 4:12)। आइए, हम यहां यूहन्ना के इस कथन पर विचार करें : "परमेश्वर को कभी किसी ने नहीं देखा"। यूहन्ना 1:18 में लिखा है – "परमेश्वर को किसी ने कभी नहीं देखा : परमेश्वर एकलौता, जो पिता की गोद में है, उसी ने उसे प्रकट किया"। निर्गमन 33:20 में मूसा ने परमेश्वर का तेज (महिमा) देखना चाहा, लेकिन परमेश्वर ने स्पष्ट किया कि कोई मनुष्य परमेश्वर को नहीं देख सकता क्योंकि ऐसा करके मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। यूहन्ना 4:46 में, प्रभु यीशु ने कहा, "यह नहीं कि किसी ने पिता को देखा है, परन्तु जो परमेश्वर की ओर से है, केवल उसी ने पिता को देखा है"। यदि किसी ने कभी भी परमेश्वर को नहीं देखा है तब लोग **उसे** कैसे जान–पहचान पाएंगे? यूहन्ना 1:18 पर पुनः विचार करें – केवल पुत्र ने, जो **स्वयं** परमेश्वर है, परमेश्वर को देखा है और वही **उसकी** महिमा के (**उसके**) बारे में मनुष्य जाति को बता सकता है। ध्यान दें कि दूसरा कुरिन्थियों 5:14 में हमने पढ़ा – "परमेश्वर का हमारे प्रति प्रेम हमें प्रेरित (विवश) करता है कि हम भी परमेश्वर से एवं एक दूसरे से प्रेम करें"। पहला यूहन्ना 4:12 पर पुनः ध्यान दें – "...यदि हम एक दूसरे से प्रेम करें तो परमेश्वर हममें बना रहता है, और उसका प्रेम हममें सिद्ध होता है"।

परमेश्वर अपने विश्वासियों में पवित्र आत्मा के द्वारा वास करता है। जब हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं तो (अदृश्य) परमेश्वर स्वयं को हमारे द्वारा प्रकट करता है और उसका प्रेम हममें सिद्ध होता है।

"इसी से हम जानते हैं कि हम उसमें बने रहते हैं और वह हम में, क्योंकि उसने अपने आत्मा में से हमें दिया है। हमने उसे देखा है, और साक्षी देते हैं कि पिता ने पुत्र को संसार का उद्धारकर्ता करके भेजा। जो कोई यह मान लेता है कि यीशु ही परमेश्वर का पुत्र है तो परमेश्वर उसमें और वह परमेश्वर में बना रहता है" (प0यूह0 4:13—15) यहां यूहन्ना पुनः अपनी तथा अन्य सभी प्रेरितों की इस साक्षी की ओर इशारा कर रहा है कि मानव यीशु 'परमेश्वर का एकलौता पुत्र' था, जो पिता द्वारा इस संसार में भेजा गया था; और यही "परमेश्वर पुत्र" बलि होकर (मर कर) संसार का उद्धारकर्ता हुआ। उद्धार—प्राप्ति के समय जब कोई व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा में यीशु मसीह को परमेश्वर का पुत्र मानकर उस पर विश्वास करता है, तब (तत्काल) इस पारस्परिक एकता में प्रवेश करता है, अर्थात् आदम से निकल कर "मसीह में" स्थापना (हम **उसमें** और **वह** हममें)।

"जो प्रेम परमेश्वर हमसे रखता है, उसे हम जान गए हैं और हमने उस पर विश्वास किया है। परमेश्वर प्रेम है; जो प्रेम में बना रहता है, वह परमेश्वर में बना रहता है, और परमेश्वर उसमें" (प0यूह0 4:16)। जिस हद तक हम परमेश्वर को नहीं जानते उस हद तक हम (परमेश्वर के

बजाय) दूसरी चीजों पर भरोसा करेंगे। यूहन्ना यहां कहता है कि "जो प्रेम परमेश्वर हमसे रखता है, उसको हम जान गए हैं और हमें उस पर विश्वास है"। यहां उस मसीही विश्वासी की तस्वीर पाई जाती है जो अपने प्रति परमेश्वर के प्रेम की महानता को वास्तव में जानने–समझने लगा है, इसलिए उस पर आशा; भरोसा व विश्वास–विश्राम करने लगा है। "परमेश्वर प्रेम है और जो प्रेम में बना रहता है, वह परमेश्वर में बना रहता है, और परमेश्वर उसमें बना रहता है"। परमेश्वर का प्रेम सिर्फ उसके लोगों के प्रति ही नहीं है, बल्कि उसका प्रेम उसके लोगों में ऐसा काम करता है कि उनमें परमेश्वर के प्रति प्रेम पैदा होता है तथा दूसरे लोगों के प्रति भी। जब कोई मसीही विश्वासी यह समझने लगता है कि परमेश्वर उससे प्रेम रखता है, तब उसका पूरा जीवन बदलने लगता है, अर्थात् जीवन–दृष्टि बदल जाती है। परमेश्वर प्रेम है और जो प्रेम में बने रहते हैं, वे परमेश्वर में बने रहते हैं, और परमेश्वर उनमें बना रहता है। "परमेश्वर प्रेम है" – इसका मतलब सिर्फ यह नहीं कि उसके पास असीम प्रेम है। बल्कि इसका मतलब यह है कि प्रेम (प्रदर्शन) परमेश्वर का स्वभाव है। अतीत से आज तक परमेश्वर ने जो कुछ किया है और अनन्त काल तक जो भी करेगा, वह सब कुछ, उसका प्रेम प्रकट करता है। हमारे व्यवहारिक जीवन में इसका भावार्थ यह है कि परमेश्वर हमारे साथ चाहे जैसा व्यवहार करता है या चाहे जो होने व आने देता है, सब में उसका शर्त–रहित, सिद्ध एवं पवित्र प्रेम प्रकट होता है। हमारे प्रति उसका हरेक व्यवहार प्रेमपूर्ण होता है। हमारी परिस्थितियां भले ही कठिनाईयों से भरी

हों, लेकिन अपने विश्वासियों के प्रति अपने महान प्रेम के कारण, इन कठिन परिस्थितियों के द्वारा भी, परमेश्वर अपनी सर्वोत्तम इच्छा–योजना उनके जीवन में पूर्ण करेगा।

"इसी से प्रेम हम में सिद्ध होता है कि न्याय के दिन हमें साहस हो; क्योंकि जैसा वह है, वैसे ही हम भी संसार में हैं" (प0यूह0 4:17)। इस परस्पर एकता के कारण (अर्थात् विश्वासी के जीवन में प्रभु का वास और विश्वासीजन प्रभु में; और चूंकि इस एकता–सम्बन्ध की जड़ परमेश्वर के सिद्ध प्रेम में है; इसलिए) विश्वासी के जीवन में परमेश्वर के प्रेम की सिद्धता या पूर्णता सम्भव है। क्यों? क्योंकि हमारे जीवन में और हमारे जीवन द्वारा परमेश्वर का प्रेम प्रवाहित होता है। यह पूर्ण, परिपक्व एवं सिद्ध प्रेम ऐसे विश्वासियों को तैयार करेगा जिनमें "न्याय के दिन हियाव" होगा। यहां 'हियाव' का अर्थ है – निर्भयता। मसीह में जीना तथा परमेश्वर के प्रेम में विकसित होना, प्रभु के साथ हमारे सम्बन्ध में प्रगाढ़ता एवं भरोसा पैदा करेगा। यूहन्ना यह भी लिखता है कि "जैसा वह है वैसे ही संसार में हम भी हैं"। चूंकि वह हममें है और हम उसमें हैं, इसलिए हम साहस के साथ "न्याय के दिन" अनुग्रह के सिंहासन के समीप आ सकेंगे; क्योंकि अब "हम नहीं, बल्कि मसीह हममें" जीवित है – "जैसे वह है, वैसे ही हम भी हैं"।

"प्रेम में भय नहीं होता; परन्तु सिद्ध प्रेम भय को दूर कर देता है, क्योंकि भय में दंड निहित है, और जो भय करता है वह प्रेम में सिद्ध नहीं हुआ" (प0यूह0 4:18)। चूंकि विश्वासीजन मसीह के स्वभाव में निर्मित होता जा रहा

है, इसलिए उसे परमेश्वर से अथवा अन्य किसी चीज से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यहां जिस भय की बात लिखी है वह दोष–भावना पर आधारित भय होता है, अर्थात् भविष्य में दंडित होने का पीड़ाप्रद भय। लेकिन सिद्ध प्रेम और भय दोनों साथ–साथ नहीं रह सकते। स्वर्गिक प्रेम के सहारे परमेश्वर तक पहुंचने वाले विश्वासी को भयभीत होकर छिपने की कोई जरूरत नहीं। भय का सम्बन्ध सजा से है; इसलिए प्रभु के प्रेम के अधीन जीने वाले मसीही के अनुभव का अंग भय नहीं हो सकता। हमारी सजा को मसीह यीशु अपने ऊपर ले चुका है, इसलिए हमें पूर्णतः क्षमा प्रदान की गई है। अब विश्वासीजन को भावी बातों, ईश्वरीय न्याय अथवा अनन्तकाल से भयभीत होने की बिल्कुल जरूरत नहीं है; क्योंकि हम यह जानते हैं कि परमेश्वर हमें पूर्णरूपेण प्रेम करता है (रोमि0 8:15,38–39)।

"हम इसलिए प्रेम करते हैं, क्योंकि उसने पहिले हमसे प्रेम किया" (प0यूह0 4:19)। हमारे प्रति परमेश्वर के प्रेम पर ही हमारा प्रेम आधारित है – चाहे परमेश्वर के प्रति हो अथवा दूसरों के प्रति। परमेश्वर का प्रेम ही सच्चे प्रेम का स्रोत, आधार एवं शुरुआत है। हम अपनी सामर्थ्य में ऐसा प्रेम नहीं कर सकते। जब हम परमेश्वर में बने रहते हैं, तो उस सच्चे परमेश्वर में बने रहते हैं जो प्रेम है, और इस प्रकार प्रेम में बने रहते हैं; तब हम परमेश्वर के प्रेम से भरे जाते हैं तथा हमारे द्वारा उसका प्रेम प्रवाहित होता है। तब यह परमेश्वर–प्रदत्त प्रेम विश्वासियों के जीवन का

स्वाभाविक गुण हो जाता है और वे मसीह समान दूसरों को प्रेम करने में समर्थ होते हैं।

"यदि कोई कहे, 'मैं परमेश्वर से प्रेम करता हूं,', और अपने भाई से घृणा करे तो वह झूठा है; क्योंकि जो अपने भाई से जिसे उसने देखा है, प्रेम नहीं करता तो वह परमेश्वर से जिसे उसने नहीं देखा, प्रेम नहीं कर सकता। हमें उस से यह आज्ञा मिली है कि जो परमेश्वर से प्रेम करता है, वह अपने भाई से भी प्रेम करे" (प0यूह0 4:20–21)। कभी–कभी कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं : "यदि मैं अपने किसी मसीही भाई या बहन को प्रेम नहीं करता, तो क्या मैं उद्धार नहीं पाया हूं"? लोग ऐसा प्रश्न क्यों करते हैं? प्रायः पहला यूहन्ना के इस पद जैसी बात को पढ़कर। ऐसे लोग पवित्र वचन का ठीक–ठीक अर्थ समझने से चूक जाते हैं। यूहन्ना की बातों पर ध्यान दें! यूहन्ना का सुसमाचार हमें अनन्त जीवन की सुनिश्चयता प्रदान करने के लिए लिखा गया था। यूहन्ना 20:31 में ये शब्द पाए जाते हैं : "परन्तु ये जो लिखे गए हैं इसलिए लिखे गए कि तुम विश्वास करो कि यीशु ही परमेश्वर का पुत्र मसीह है, और विश्वास करके उसके नाम से जीवन पाओ"। यूहन्ना के सुसमाचार में "विश्वास" शब्द लगभग अट्ठानबे बार प्रयोग किया गया है। यूहन्ना यह समझा रहा था कि अनन्त जीवन (उद्धार–प्राप्ति) सिर्फ यीशु मसीह पर विश्वास के द्वारा ही मिलता है। बहरहाल, पहला यूहन्ना की पत्री मसीह यीशु (जिस पर हमने अनन्त जीवन के लिए विश्वास किया है) के साथ गहरी, घनिष्ठ, आध्यात्मिक संगति–सहभागिता के उद्देश्य से लिखी गई है। पहला

यूहन्ना 1:3–4 में हम यह देख चुके हैं : "जिसे हमने देखा और सुना, उसी का समाचार हम तुम्हें भी सुनाते हैं, कि तुम भी हमारे साथ सहभागिता रखो; वास्तव में हमारी यह सहभागिता पिता के और उसके पुत्र यीशु मसीह के साथ है। और ये बातें हम इसलिए लिखते हैं कि हमारा आनन्द पूरा हो जाए"। इसीलिए इस पत्री में "बने रहना" जैसे शब्द लगभग छब्बीस बार इस्तेमाल हुए हैं। हम प्रभु यीशु मसीह को विश्वास के द्वारा जानते हैं। उसमें बने रहने के द्वारा, उस पर आश्रित रहने के द्वारा हम उसके घनिष्ठ संगति–सहभागिता में बढ़ते हैं, ताकि वह हमारे जीवन में अपना जीवन पुनरुत्पादित (निर्मित) करे। अब इस संदर्भ में उपर्युक्त बीसवें–इक्कीसवें पदों का अर्थ समझना सरल हो जाता है। प्रभु से **उद्धार पाने** के बाद भी, अपने भाई के प्रति अप्रिय व्यवहार दर्शाना सम्भव है। बहुत से विश्वासी इस समस्या से जूझते रहते हैं। लेकिन **परमेश्वर के प्रेम** की गहराई के अनुभव में पड़ने पर अपने भाईयों के प्रति नफरत का नजरिया बनाए रखना सम्भव नहीं है। परमेश्वर **पिता** से प्रेम रखने वाले, उसके घराने के लोगों से भी प्रेम रखेंगे। इसीलिए यूहन्ना यहां लिखता है कि "जो कोई परमेश्वर से प्रेम रखता है, वह अपने भाई से भी प्रेम रखे"। स्मरण रहे कि यूहन्ना ने अपनी इस पत्री के इन पदों में (उद्धार पाने के बारे में नहीं बल्कि) प्रभु के साथ गहरी, घनिष्ठ एवं सुस्थिर आध्यात्मिक संगति–सहभागिता के बारे में लिखा है।

7

"जो कोई विश्वास करता है कि यीशु ही मसीह है, वह परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है; और जो पिता से प्रेम करता है, वह उस से भी प्रेम करता है जो उस से उत्पन्न हुआ है" (प0यूह0 5:1)। जो नया जन्म पाए हैं, वह "मसीह" पर भरोसा किए हैं जो हमारे लिए **नबी, याजक** एवं **राजा** होने के लिए परमेश्वर का अभिषिक्त जन है। **याजक** के रूप में उसने अपने आप को हमारे पापों के बदले बलिदान होने के लिए परमेश्वर के समक्ष अर्पित कर दिया। **राजा** के तौर पर वह सर्वोपरि है और एक दिन शासन करने पुनः वापस आएगा (मत्ती 16:15—17; प0यूह0 2:1; फिलि0 2:9—11; प्रका0 19:11—16)।

यह जानने—परखने के लिए कि अमुक व्यक्ति सच्चा विश्वासी है या नहीं, यह जानना जरूरी है कि वह व्यक्ति मसीह के बारे में क्या विश्वास करता है। सच्चा विश्वासी यह विश्वास करता है कि यीशु ही **मसीह** है। किसी बात या व्यक्ति पर विश्वास करने का मतलब है — उस बात या व्यक्ति पर पूरा भरोसा करना और उसकी सत्यता के प्रति पूर्णतः कायल होना। यहां सत्य क्या है? सत्य यह है कि यीशु ही एकमात्र **मसीह** है। अर्थात् वही पवित्र आत्मा से अभिषिक्त, परमेश्वर की ओर से भेजा गया **मसीह** है; जो पाप के बदले क्रूस पर मरा और पुनः जीवित होकर संसार का एकमात्र उद्धारकर्ता है। जो यीशु को ही मसीह मानकर

उस पर विश्वास करता है और उसमें बने रहकर, परमेश्वर के प्रेम की पहचान में बढ़ता है, उसके जीवन में परमेश्वर के प्रति और अपने सह–विश्वासियों के प्रति प्रेम पैदा होता है।

"जब हम परमेश्वर से प्रेम करते और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं तो इसी से हम जानते हैं कि हम परमेश्वर की संतानों से प्रेम करते हैं" (प0यूह0 5:2)। जिस प्रकार विश्वासी भाई–बहनों के प्रति मसीहियों का प्रेम, परमेश्वर के प्रति उनके प्रेम की परख एवं प्रमाण है; उसी प्रकार परमेश्वर के प्रति उनका प्रेम (जिसका स्रोत स्वयं परमेश्वर ही है) ही, विश्वासी भाई–बहनों के प्रति उनके प्रेम का आधार है। यहां यूहन्ना अपनी इस पत्री के चौथे अध्याय के बीसवें–इक्कीसवें पदों की बात के विपरीत नहीं लिख रहा है। वह तो इस सच्चाई पर जोर दे रहा है कि परमेश्वर के प्रति प्रेम और विश्वासी भाई–बहनों के प्रति प्रेम को अलग नहीं किया जा सकता (इनमें परस्पर गहरा सम्बन्ध है)। अपने मसीही भाई–बहनों के प्रति प्रेम–भाव बगैर विश्वासीजन परमेश्वर के प्रति सच्चा प्रेम नहीं रख सकता। इस पद पर पुनः ध्यान दें : "जब हम परमेश्वर से प्रेम करते हैं और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं, तो इसी से हम जानते हैं कि हम परमेश्वर की संतानों से प्रेम करते हैं"। इस पत्री के दूसरे अध्याय के तीसरे पद में हमने यह पढ़ा था : "यदि हम उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं, तो इसी से हमें ज्ञात होता है कि हम उसे जान गए हैं"। अतः निष्कर्ष यह है कि परमेश्वर का सच्चा ज्ञान रखने वाले विश्वासीजन उससे प्रेम करते हैं, उसकी आज्ञाओं को

मानते हैं और उसकी संतानों से प्रेम करते हैं। जो विश्वासी लोग परमेश्वर को जानने का दावा करते हैं, किन्तु अन्य विश्वासियों को शत्रु जैसा समझते हैं; उनका ईमान एवं व्यवहार यूहन्ना की बातों से मेल नहीं खाता। यहां यह भी नहीं भूलना है कि यह मसीही प्रेम हम अपनी कसरत या कोशिश से पैदा नहीं कर सकते। यह कोई हल्का–फुल्का, छिट–पुट, यदा–कदा या थोड़ा यहां थोड़ा वहां दिखने वाला प्रेम नहीं है। इस प्रेम की परिधि में सब आ जाते हैं। यूहन्ना कहता है कि अपने अदृश्य परमेश्वर के प्रति प्रेम–प्रदर्शन का एक तरीका अपने इर्द–गिर्द के विश्वासी भाई–बहनों से प्रेम करना है।

"क्योंकि परमेश्वर का प्रेम यह है कि हम उसकी आज्ञाओं का पालन करें और उसकी आज्ञाएं बोझिल नहीं हैं" (प0यूह0 5:3)। यूहन्ना के सुसमाचार के चौदहवें–पंद्रहवें अध्यायों में प्रभु यीशु द्वारा अपने चेलों से कही गई बातों के समान इस पद के भी वचन हैं (यूह0 14:15–31; एवं 15:10,17)। प्रभु यीशु ने अपने चेलों को यह आज्ञा दी – एक दूसरे से प्रेम रखो। यह आज्ञा भार–स्वरूप नहीं है; क्योंकि इसका स्रोत परमेश्वर का प्रेम है; और यह प्रेम प्रभु के विश्वासियों के जीवन में प्रवाहित होता है। यहां तीसरे पद के प्रारम्भिक शब्दों पर ध्यान दें : "परमेश्वर का प्रेम यह है" (हमारा प्रेम नहीं) ...हमारे द्वारा प्रवाहित होने वाला प्रभु का प्रेम।

"क्योंकि जो कुछ परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है, वह संसार पर जय प्राप्त करता है, और वह विजय जिसने

संसार पर जय प्राप्त की है – हमारा विश्वास है" (प0यूह0 5:4)। गलातियों की पत्री के 6:14 में पौलुस यह लिखता है : "परन्तु ऐसा कभी न हो कि मैं किसी अन्य बात पर गर्व करूं, सिवाय प्रभु यीशु मसीह के क्रूस के, जिसके द्वारा संसार मेरी दृष्टि में क्रूस पर चढ़ाया जा चुका है"। जब हम मसीह के साथ अपने पुराने मनुष्यत्व के सह–क्रूसित होने की आध्यात्मिक सच्चाई पर विश्वास एवं भरोसे के साथ जीवन बिताते हैं, तब हम संसारिकता पर विजय पाते हैं। तब संसारिकता हम पर अधिकार नहीं जमा सकती और तब हम में संसारिकता की अभिलाषा नहीं होती। "वह विजय जिससे संसार पर जय प्राप्त होती है – हमारा विश्वास है" – इस सच्चाई पर विश्वास कि हम संसार की दृष्टि में क्रूस पर चढ़ाए जा चुके हैं और संसार हमारी दृष्टि में क्रूस पर चढ़ाया जा चुका है।

"और वह कौन है जो संसार पर विजयी होता है, सिवाय उसके जो यह विश्वास करता है कि यीशु ही परमेश्वर का पुत्र है" (प0यूह0 5:5)? यह पद चौथे पद के बात की विजय–घोष के साथ पुनः पुष्टि करता है। संसारिकता पर केवल वही लोग सच्ची विजय पाते हैं जो यह **विश्वास** करते हैं कि यीशु ही परमेश्वर का एकलौता पुत्र है। यूहन्ना ने अपनी इस पत्री में संसारिक जीवन एवं सोच–विचार के प्रति बारम्बार आगाह किया है। संसार पर विजयी होने का क्या तात्पर्य है? अपनी मनमर्जी करने के अभिलाषी आधुनिक समाज में रहते हुए, परमेश्वर की इच्छा का अनुसरण करना। संसार का तौर–तरीका शैतानी सत्ता–शासन व लोभ–लालच के सिद्धान्त पर आधारित है।

जब हम विश्वास से यह मानते व अपनाते हैं कि यीशु ही परमेश्वर है, और क्रूस पर हमारे पाप का दंड–मूल्य चुकता करने के लिए वह बलि हुआ तथा उसके साथ क्रूस पर हमारा पुराना मनुष्यत्व भी सह–क्रूसित हुआ; तब हम इस संसार के प्रलोभन पर विजयी होने की सामर्थ्य पाते हैं। तब संसारिकता हमारे ऊपर अपना राज–काज नहीं कर पाती, और हम भी संसारिकता के अभिलाषी नहीं होते।

"यह वही है जो जल और लहू के द्वारा आया, अर्थात् यीशु मसीह; केवल जल द्वारा ही नहीं, वरन् जल और लहू द्वारा" (प0यूह0 5:6)। पांचवे पद के अन्त में यूहन्ना के ये शब्द पाए जाते हैं : "यीशु ही परमेश्वर का पुत्र है"। यहां छठवें पद में यह कहा गया है कि परमेश्वर का पुत्र "जल और लहू के द्वारा आया"। सम्भवतः "जल" प्रभु यीशु के बपतिस्मा की ओर इशारा करता है और "लहू" क्रूस पर पाप के बदले उसकी मृत्यु की ओर। जल में यीशु मसीह का बपतिस्मा उसकी पार्थिव सेवकाई का प्रारम्भ था और उसका लहू बहाया जाना उसकी इस सेवकाई का समापन था। यूहन्ना सम्भवतः इन दोनों बातों का उल्लेख करके उस जमाने की एक खास झूठी शिक्षा का खंडन कर रहा था। उन दिनों कुछ झूठे शिक्षक यह सिखा रहे थे कि (मानव) यीशु ही मसीह नहीं था; बल्कि उसके बपतिस्मा के समय उसमें परमेश्वर के पुत्र की आत्मा समाई और परमेश्वर के पुत्र की यह आत्मा उसके क्रूस पर चढ़ाए जाने से पहले ही (मानव) यीशु को छोड़कर चली गई। परन्तु यूहन्ना यहां इस सच्चाई पर जोर दे रहा है कि जो (मानव) यीशु "जल" में बपतिस्मा लेकर अपनी सेवा प्रारम्भ

किया, वह परमेश्वर का पुत्र था और वही हमारे पापों के बदले क्रूस पर अपना "लहू" बहाकर अपना सेवा–कार्य पूरा किया (यूह0 17:4)। प्रभु यीशु के बपतिस्मा के समय पवित्र आत्मा एक कबूतर की भांति उसके ऊपर आया। आगे चलकर प्रेरितों के द्वारा पवित्र आत्मा ने इस सत्य की पर्याप्त साक्षी दी कि यरदन नदी में उस समय बपतिस्मा लेने वाला तथा क्रूस पर अपना लहू बहाने वाला जन परमेश्वर का पुत्र (मसीह) ही था। पवित्र आत्मा सत्य ही सिखाता है क्योंकि वह सत्य की आत्मा है (यूह0 16:13–14)।

"और पवित्र आत्मा ही है जो साक्षी देता है, क्योंकि पवित्र आत्मा सत्य है। साक्षी देने वाले तीन हैं; आत्मा, जल और लहू; और इन तीनों में सहमति है" (प0यूह0 5:7–8)। यहां आठवां पद मसीह यीशु के जीवन की निर्णायक घटनाओं से सम्बंधित है जिनके द्वारा वह देहधारी परमेश्वर अर्थात् मानव रूप में परमेश्वर का पुत्र प्रकट, प्रदर्शित व प्रमाणित हुआ – उसके बपतिस्मा के समय अर्थात् **जल** में, उसकी मृत्यु के समय अर्थात् **लहू** के द्वारा, और उसके पुनरुत्थान के समय अर्थात् पवित्र **आत्मा** के द्वारा। उसके बपतिस्मा के समय ईश्वरीय आकाशवाणी के द्वारा उसे परमेश्वर का प्रिय पुत्र घोषित किया गया (मत्ती 3:16–17)। उसके पुनरुत्थान के समय वह सामर्थ्यवान परमेश्वर का पुत्र ठहराया गया (रोमि0 1:3–4)। इस त्रिपक्षीय साक्षी से यही प्रमुख सत्य प्रमाणित हुआ कि (मानव) यीशु वास्तव में "परमेश्वर का पुत्र" है।

"यदि हम मनुष्यों की साक्षी मान लेते हैं तो परमेश्वर की साक्षी कहीं बढ़कर है, क्योंकि परमेश्वर की साक्षी यह है, कि उसने अपने पुत्र के विषय में साक्षी दी है" (प0यूह0 5:9)। यहूदी व्यवस्था के अनुसार एक ही व्यक्ति की गवाही मान्य एवं प्रामाणिक साक्षी नहीं है। किसी सत्य की मान्यता या प्रामाणिकता का दो–तीन साक्षियों द्वारा प्रमाणित होना आवश्यक है (लैव्य0 17:6;19:15)। चूंकि दो–तीन मनुष्यों की साक्षी मान्य थी, इसलिए यूहन्ना कहता है कि परमेश्वर द्वारा दी गई साक्षी को मानना और भी प्रमाणिक है। सुसमाचारों में कम से कम दो बार परमेश्वर की ओर से (आकाशवाणी द्वारा) यह साक्षी दिए जाने का वर्णन है कि यीशु ही "परमेश्वर का पुत्र" है। उसके बपतिस्मा के समय (मत्ती 3:16–17) तथा उसके रूपान्तर के समय (मत्ती 17:1–7)। अतः यूहन्ना कहता है कि यदि मनुष्यों की गवाही मान ली जाती है तो प्रभु परमेश्वर की ओर से दी गई इन तीनों साक्षियों पर भरोसा करना और अधिक आसान होना चाहिए – अर्थात् पहला यूहन्ना 5:8 में उल्लिखित **जल, लहू** और **आत्मा** की साक्षी; क्योंकि इनके पीछे स्वयं प्रभु परमेश्वर (की सत्यता व विश्वसनीयता) है। इन तीनों की यही ईश्वरीय गवाही है कि यीशु ही मसीह है।

"जो परमेश्वर के पुत्र पर विश्वास करता है, वह स्वयं में साक्षी रखता है; वह जो परमेश्वर पर विश्वास नहीं करता उसे झूठा ठहराता है, क्योंकि उसने उस साक्षी पर विश्वास नहीं किया जो परमेश्वर ने अपने पुत्र के विषय में दी है" (प0यूह0 5:10)। जब कोई परमेश्वर की सच्ची

संतान हो जाता है तब उसकी अन्तरात्मा में वास करने वाला पवित्र आत्मा इस सत्य की साक्षी देता है कि मसीह यीशु ने जो कुछ कहा एवं जो कुछ किया वह सब सत्य है। सच तो यह है कि पवित्र आत्मा का यही प्राथमिक कार्य है – प्रत्येक विश्वासी के अन्तरात्मा में मसीह को प्रकट करना एवं उसके सत्यता की साक्षी होना (यूह0 14:25; 15:26; 16:7–13)। बहरहाल, जो लोग उसके पुत्र के बारे में परमेश्वर–प्रदत्त साक्षी को नहीं मानते, उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि परमेश्वर की सीधी–सादी साक्षी को अस्वीकार करने के द्वारा वे प्रभु परमेश्वर को झूठा ठहराते हैं। प्रेरित यूहन्ना अपने समय के झूठे शिक्षकों को चेतावनी दे रहा था, क्योंकि वे परमेश्वर के ज्ञान का दावा करते हुए, उसके पुत्र के बारे में ईश्वरीय साक्षी को अस्वीकार कर रहे थे।

"वह साक्षी यह है कि परमेश्वर ने हमें अनन्त जीवन दिया है, और यह जीवन उसके पुत्र में है। जिसके पास पुत्र है उसके पास जीवन है; जिसके पास परमेश्वर का पुत्र नहीं, उसके पास वह जीवन भी नहीं" (प0यूह0 5:11–12)। अनन्त जीवन एक विशिष्ट वरदान है। इसे कमाया नहीं जा सकता। यह विशिष्ट वरदान एक विशिष्ट व्यक्ति है – यीशु मसीह। अर्थात् यह अनन्त जीवन सिर्फ मसीह द्वारा ही नहीं, बल्कि "मसीह में" मिलता है। अतः जिसके पास "पुत्र" है उसके पास जीवन है अर्थात् एकमात्र सच्चा जीवन। हां, यही सच्चा जीवन है – अनन्त जीवन (यूह0 6:35; 11:25–26; 14:16–18; कुलु0 3:1–4)।

"मैंने तुमको जो परमेश्वर के पुत्र के नाम पर विश्वास करते हो, ये बातें इसलिए लिखी हैं कि तुम जानो कि अनन्त जीवन तुम्हारा है" (प0यूह0 5:13)। प्रभु का दास यूहन्ना विश्वासियों को इस सच्चाई के प्रति सुनिश्चित करना चाहता था कि मसीह में उन्हें अनन्त जीवन प्राप्त हो चुका है। प्रेरित यूहन्ना अपनी इस पत्री में यहां जो लिखता है, उसी प्रकार की बात उसने यूहन्ना 20:31 में भी लिखी है। अन्तर यह है कि यूहन्ना का सुसमाचार अविश्वासियों को प्रभु पर विश्वास करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु लिखा गया था, ताकि वे मसीह में अनन्त जीवन पाकर स्वर्गिक जीवन का आनन्द ले सकें; जबकि यूहन्ना की यह पत्री विश्वासियों को लिखी गई थी, ताकि वे अपने विश्वास एवं अनन्त जीवन में स्थिर हों। दोनों प्रकार के लोगों के लिए अनन्त जीवन की प्राप्ति के बारे में सुनिश्चित होना आवश्यक था। इस निश्चयता के आधार पर ही विश्वासीजन प्रभु की संगति–सहभागिता में गहराई से उन्नति कर सकते हैं।

"और जो साहस हमें उसके सम्मुख होता है वह यह है; कि यदि हम उसकी इच्छा के अनुसार कुछ मांगें, तो वह हमारी सुनता है। यदि हम जानते हैं कि जो कुछ हम उस से मांगते हैं वह हमारी सुनता है, तो हम यह भी जानते हैं कि जो कुछ हमने उससे मांगा वह हमें प्राप्त हो चुका है" (प0यूह0 5:14–15)। परमेश्वर की संतान होने तथा यीशु के परमेश्वरत्व का ज्ञान होना एक बात है; किन्तु दैनिक जीवन की ज़रूरत एवं समस्याओं के बारे में क्या कहेंगे? विश्वासियों में इस बात की आशा, भरोसा एवं

विश्वास होता है कि प्रभु परमेश्वर अपने लोगों की प्रार्थनाओं को सुनता है और अपनी इच्छानुसार जवाब देता है। प्रार्थना के प्रत्युत्तर सम्बन्धी प्रमुख शर्त प्रभु में 'बने रहना' है। यदि हम प्रभु पर आशा, भरोसा, विश्वास–विश्राम के साथ उसी में लवलीन रहते हैं और इस प्रकार उसी में 'बने रहते' हैं और उसका वचन हममें बना रहता है; तब हम जो मांगते हैं, वह पूरा होता है। क्यों? क्योंकि जब हम प्रभु में बने रहते हैं और उसका वचन हममें बना रहता है, तब हमारी इच्छा उसकी इच्छा के अधीन होती है और हमारी प्रार्थना भी उसकी इच्छानुसार होती है। इस प्रकार उसकी इच्छानुसार की गई प्रार्थना का उत्तर भी अवश्य मिलता है।

"यदि कोई अपने भाई को ऐसा पाप करते देखे जिसका परिणाम मृत्यु न हो, तो वह प्रार्थना करे और परमेश्वर उसके कारण उन्हें जिन्होंने ऐसा पाप किया हो जिसका परिणाम मृत्यु नहीं है, जीवन देगा। ऐसा पाप तो है जिसका परिणाम मृत्यु है; मैं यह नहीं कहता कि वह इस बात के लिए निवेदन करे। सब प्रकार की अधार्मिकता पाप है, परन्तु ऐसा पाप भी है जिसका परिणाम मृत्यु नहीं होता" (प0यूह0 5:16–17)। चूंकि विश्वासी लोग एक दूसरे के प्रति प्रेम–भाव रखते हैं, इसलिए एक दूसरे के लिए, परमेश्वर से विनती–प्रार्थना भी करते हैं। विनती–प्रार्थना कलीसियाई संगति का एक प्रमुख अंग है। इस पद में एक खास प्रश्न यह उठता है कि कौन सा पाप–कर्म ऐसा है जिसका परिणाम मृत्यु नहीं, और कौन सा पाप–कर्म ऐसा है जिसका परिणाम मृत्यु है। चूंकि इस सम्बन्ध में यूहन्ना ने विस्तृत रूप में कुछ नहीं लिखा; इससे ऐसा प्रतीत होता है

जैसे कि उसकी यह पत्री जिन्हें सम्बोधित की गई थी वे लोग मृत्युजनक पाप–कर्म एवं अमृत्युजनक पाप–कर्म में अंतर की बात समझ रहे थे। बहरहाल, यूहन्ना को शायद ही यह अन्दाज रहा हो कि मृत्युजनक पाप के बारे में उसकी टिप्पणी कितना वाद–विवाद पैदा करेगी। यूहन्ना के इन शब्दों का वास्तविक मायने–मतलब शायद ही कोई स्पष्ट कर सके। हो सकता है, वह इस ओर इशारा कर रहा था कि बाइबॅलीय इतिहास में प्रभु परमेश्वर ने पाप करने वाले अपने विश्वासियों का अनेक बार मृत्यु–दंड द्वारा न्याय किया है (लैव्य0 10:107; गिनती 16; यहोशू 6,7; प0कुरि0 11:30)। या हो सकता है कि वह उन सब की आत्मिक मृत्यु की ओर इशारा कर रहा था जो मसीह को अस्वीकार करने वालों पर आती है। इस पद की इस अस्पष्ट बात का चाहे जो अर्थ हो, एक बात बिल्कुल साफ है कि हमें दूसरों में पाप ढूंढ़ने वाला नहीं होना है। परमेश्वर ने हमें दूसरों में बुराई ढूंढ़ने के लिए उन पर नजर रखने के वास्ते नहीं बुलाया है। इसके बजाय हमें उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

"हम जानते हैं कि जो कोई परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वह पाप नहीं करता; परन्तु वह जो परमेश्वर से उत्पन्न हुआ, उसकी रक्षा करता है और वह दुष्ट उसे छूने नहीं पाता" (प0यूह0 5:18)। विश्वासियों द्वारा अपने आपको सुरक्षित रखने की कोशिश से बहुत कम सुरक्षा प्राप्त हो सकती है। इसके बजाय "परमेश्वर का एकलौता पुत्र" ही विश्वासियों को सबसे सुरक्षित सुरक्षा प्रदान करता है। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि यूहन्ना इस पद में यह लिखता है :

"और दुष्ट उसे छूने नहीं पाता"। इस सच्चाई को समझने में पतरस का अनुभव भी सहायता प्रदान करता है। "शमौन, हे शमौन, देख! शैतान ने तुम लोगों को गेहूं के समान फटकने के लिए आज्ञा मांग ली है, परन्तु मैंने तेरे लिए प्रार्थना की है कि तेरा विश्वास न चला जाए। अतः जब तू फिरे तो अपने भाईयों को स्थिर करना" (लूका 22:31–32)।

"हम जानते हैं कि हम परमेश्वर से हैं, और सारा संसार उस दुष्ट के वश में पड़ा है" (प0यूह0 5:19)। सभी झूठे शिक्षक तथा उनके सब अनुयायी इस संसार के हैं और शैतान संसार का देवता है। हमें यह नहीं भूलना है कि इस संसार के तौर–तरीके एवं सिद्धान्त शैतान के नियंत्रण में हैं। इसीलिए प्रभु के लोगों से यह कहा गया है कि वे संसारिकता से दूर (पृथक) रहें (दू0कुरि0 6:14–7:1)।

"हम जानते हैं कि परमेश्वर का पुत्र आ चुका है, और उसने हमें समझ दी है, कि हम उसे जो सत्य है जान सकें, और हम उसमें हैं जो सत्य है, अर्थात् उसके पुत्र यीशु मसीह में। यही सच्चा परमेश्वर और अनन्त जीवन है" (प0यूह0 5:20)। झूठे शिक्षक सदैव गलत होते हैं। वास्तविकता यह है कि परमप्रधान परमेश्वर का "पुत्र" स्वयं स्वर्ग छोड़कर इस धरती पर अवतरित हुआ और मरियम नामक कुंवारी कन्या के गर्भ से पैदा हुआ। सभी प्रेरितगण उसे घनिष्ठता से जानते–पहचानते थे और उसकी सच्ची साक्षी दिए (प0यूह0 1:1–3)।

पाप में गिरने के बाद आदम–हव्वा अपने परमेश्वर से दूर हो गए। उनके मन आध्यात्मिक तौर पर अंधे हो गए और परमेश्वर को जानने में असमर्थ। आदम के वंशज होने के कारण हम भी परमेश्वर विहीन एवं सत्य से अपरिचित अवस्था में पैदा हुए। परन्तु मसीह यीशु पर विश्वास करने पर, हम पवित्र आत्मा द्वारा, आदम से निकालकर "मसीह में" स्थापित कर दिए गये। प्रभु यीशु मसीह ही "सच्चा परमेश्वर और अनन्त जीवन" है। जिस (मानव) यीशु पर प्रेरितों ने विश्वास किया, वही सत्य परमेश्वर है (मत्ती 1:23)। हम **नया जन्म** पाए विश्वासीगण उसके जीवन में सहभागी हैं, अर्थात् अनन्त जीवन (प0यूह0 5:11–13)।

"बच्चों, अपने आप को मूर्तियों से बचाए रखो" (प0यूह0 5:21)। अन्ततः अपनी इस पत्री का समापन करते हुए, प्रभु के विश्वासियों को प्रेरित यूहन्ना यह चेतावनी देता है कि प्रत्येक ऐसी वस्तु एवं प्रत्येक ऐसे व्यक्ति से दूर रहें जो उनके जीवन में वह प्राथमिकता पाने की कोशिश में है जो (प्राथमिकता) सिर्फ प्रभु परमेश्वर को ही मिलनी चाहिए। स्मरण रहे, जो चीज़ हमारे जीवन में प्रभु का स्थान लेने लगती है, वही हमारे लिए 'मूर्ति–पूजा' हो जाती है (मत्ती 22:37–38)।

दूसरा यूहन्ना

8

"मुझ प्राचीन की ओर से, उस चुनी हुई महिला तथा उसके बच्चों के नाम जिनसे मैं सत्य में प्रेम रखता हूं; और न केवल मैं, वरन् वे सब भी जो सत्य को जानते हैं" (दू0यूह0 1:1)। इस दूसरा यूहन्ना की पत्री में लेखक का नाम नहीं दिया गया है। इसकी विषय–वस्तु, पहला यूहन्ना के समान होने के कारण, सामान्यतः यह माना जाता है कि इस पत्री को भी उसी लेखक ने लिखा है। यहां लेखक ने स्वयं को "प्राचीन" कहा है, जो सम्भवतः उसकी बड़ी उम्र अथवा कलीसियाई प्रेरित (या अध्यक्ष) पद की ओर इशारा करता है।

यह सुस्पष्ट नहीं है कि यूहन्ना ने इस पत्री को किसे लिखा था। कुछ लोगों का विचार है कि यह पत्री एक मसीही "महिला" और उसके बच्चों को लिखी गई थी। दूसरे कुछ लोगों का विचार यह है कि संभवतः यह पत्री किसी मंडली को लिखी गई थी जिसे यूहन्ना ने "चुनी हुई महिला और उसके बच्चों" कह कर संबोधित किया। इस कारण से भी कई लोग इस पत्री को किसी एक मंडली के नाम लिखा हुआ मानते हैं, क्योंकि लेखक यह भी लिखता

है कि "चुनी हुई महिला" को "वे सब प्रेम करते हैं जो सत्य को जानते हैं"। बहरहाल, यह पुस्तक चाहे जिसके लिए लिखी गई हो, प्रमुख बात यह है कि यह चुने हुए लोगों के लिए अर्थात् परमेश्वर के लोगों के लिए परमेश्वर का वचन है।

"अर्थात् उस सत्य के कारण जो हम में बना रहता है, और सर्वदा हमारे साथ रहेगा" (दू0यूह0 1:2)। प्रभु के विश्वासी लोग एक दूसरे से इसलिए प्रेम रखते हैं, क्योंकि उनमें "सत्य... है"। प्रभु यीशु मसीह ही "सत्य" है (यूहन्ना 14:6)। आत्मा के द्वारा विश्वासी के जीवन में मसीह–जीवन का पुनरुत्पादन (निर्माण) होता है। अविश्वासीजन ईश्वरीय सत्य से अपरिचित होता है, अतएव उसका जीवन परमेश्वर के प्रेम द्वारा नहीं नियंत्रित होता। ख्रीष्त–केन्द्रित शिक्षा व सिद्धान्त को अपनाने वाले विश्वासियों में ख्रीष्त के द्वारा परस्पर घनिष्ठता व संगति–सहभागिता होती है (प0यूह0 1:3)।

"अनुग्रह, दया और शांति, परमेश्वर पिता और पिता के पुत्र यीशु मसीह की ओर से हमारे साथ सत्य और प्रेम में बने रहेंगे" (दू0यूह0 1:3)। विश्वासियों को परमेश्वर की दया, उसका अनुग्रह और उसकी शांति "सत्य और प्रेम सहित" प्रदान किए गये हैं। यूहन्ना रचित सुसमाचार के 14:6 में प्रभु यीशु के यह वचन पाए जाते हैं : "यीशु ने

उस से कहा, 'मार्ग, सत्य और जीवन मैं ही हूं। बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंच सकता'।" पहला यूहन्ना के चौथे अध्याय के आठवें पद में प्रभु के ये शब्द भी हैं : "वह जो प्रेम नहीं करता परमेश्वर को नहीं जानता, क्योंकि परमेश्वर प्रेम है"। अतएव सत्य और प्रेम सहित "परमेश्वर पिता और पुत्र यीशु मसीह की ओर से अनुग्रह, दया और शांति"; का भावार्थ यह है कि आत्मा के अनुसार आचरण करने, मसीह में बने रहने तथा प्रभु की संगति–सहभागिता में जीवन व्यतीत करने पर हमारे जीवन में परमेश्वर की दया, अनुग्रह एवं शांति पाई जाएगी।

"मुझे तेरे कुछ बालकों को देखकर बड़ा आनन्द हुआ है कि वे उस आज्ञा के अनुसार जो पिता से हमें प्राप्त हुई है, सत्य पर चलते हैं" (दू0यूह0 1:4)। हो सकता है कि यूहन्ना यह पत्री जिन्हें लिख रहा था, उनमें से कुछ लोगों को वह जानता था, अथवा उनसे मिल चुका था या फिर किसी के द्वारा उनके बारे में सुना था। क्योंकि यहां वह लिखता है कि वे "सत्य पर चल" रहे थे। स्मरण रहे, मसीह यीशु ही सत्य है। कहने का मतलब यह है कि वे लोग मसीह में स्थिर थे अर्थात् सत्य पर स्थिर विश्वास के साथ जीवन व्यतीत कर रहे थे – मसीह में 'बने रहे'।

"अब हे महिला, मैं तुझ से निवेदन करते हुए कोई नई आज्ञा के रूप में नहीं लिखता, परन्तु वही जो आरम्भ

से हमें मिली है, कि हम परस्पर प्रेम करें" (दू0यूह0 1:5)। इससे पहले भी कहा जा चुका है कि मसीही प्रेम पवित्र आत्मा का फल है, और शरीर के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले बाइबॅलीय 'प्रेम' के अनुसार सच्चा प्रेम नहीं कर सकते। शारीरिक जन सिर्फ स्वार्थ–सिद्धि एवं स्वार्थ–केन्द्रित जीवन में लगा रहता है, अतएव बाइबॅलीय प्रेम में आचरण नहीं कर सकता। यूहन्ना ने विश्वासियों को एक दूसरे से प्रेम रखने का जो प्रोत्साहन दिया है, वही हमारे समस्त परस्पर सम्बन्धों एवं कार्यों का आधार होना है। पवित्र आत्मा की अधीनता में, परमेश्वर के प्रेम के अनुसार आचरण से, एक दूसरे के बीच आने वाली समस्याओं का समाधान आसान हो जाता है। कलीसिया के लोगों में सच्चा मसीही प्रेम आपस में एक दूसरे की सेवा–सहायता को बढ़ावा देता है। यह बाइबॅलीय प्रेम एक दूसरे के प्रति क्षमाशीलता, समझदारी, सेवा, विनम्रता एवं एकता बढ़ाता है। इन बातों में उन्नति करने वाली स्थानीय कलीसिया की सेवकाई प्रभु परमेश्वर द्वारा नियंत्रित, संचालित एवं प्रभावी होती है।

"प्रेम यह है कि हम उसकी आज्ञाओं के अनुसार चलें। यह वही आज्ञा है जिसे तुमने आरम्भ से सुना है, जिस पर तुम्हें चलना चाहिए" (दू0यूह0 1:6)। पवित्र आत्मा के फलों में से एक फल है – प्रेम। इस प्रेम में चलना,

पवित्र आत्मा के चलाए चलना है। हम जितना अधिक आत्मा की अधीनता में जीते हैं, उतना ही अधिक मसीह के स्वभाव में निर्मित होते जाते हैं, और उसके अनुपात में हमारे जीवन में अधिकाधिक मसीही प्रेम प्रवाहित होता है। अनेक विश्वासी मसीह के जीवन की नकल करके आत्मिक बनने की कोशिश करते हैं। ऐसी नकल अस्थाई आत्मिकता दर्शा सकती है, लेकिन सच्चे ख्रीष्त–जीवन का आधार विश्वासीजन में वास करने वाला मसीह ही है — जैसे–जैसे विश्वासीजन मसीह के साथ अपनी आत्मिक पहचान व एकता को विश्वास द्वारा अपनाता जाता है, वैसे–वैसे पवित्र आत्मा द्वारा उसके जीवन में ख्रीष्त जीवन पुनरुत्पादित (निर्मित) होता रहता है।

"क्योंकि संसार में बहुत से भरमाने वाले निकल पड़े हैं जो यह नहीं मानते कि यीशु मसीह देह–धारण करके आया है। यही तो भरमाने वाला और मसीह–विरोधी है" (दू0यूह0 1:7)। यूहन्ना अपने पाठकों को झूठे शिक्षकों की गतिविधियों एवं शिक्षाओं के प्रति सावधान करता है कि उनके द्वारा मसीह के बारे में दी गई तालीम के प्रति खबरदार रहना है। क्या ऐसे भरमाने वाले शिक्षक प्रभु (यीशु मसीह) के देहधारण को मानते हैं? क्या वे मसीह यीशु के परमेश्वरत्व पर विश्वास करते हैं, या इनकार? मसीह यीशु के देहधारी होने तथा उसके ईश्वरत्व को इनकार करने

वाले भ्रामक शिक्षक परमेश्वर के सत्य की शिक्षा नहीं दे रहे थे। ऐसे झूठे शिक्षकों से कलीसिया के विश्वासियों को सावधान रहना था। आज की कलीसियाओं में कैसी शिक्षा दी जा रही है – मसीह यीशु द्वारा पूर्ण उद्धार–कार्य–केन्द्रित शिक्षा, या मनुष्य के कर्म–प्रयास–केन्द्रित शिक्षा? ऐसी किसी शिक्षा के महत्व एवं सच्चाई को जानने–परखने में यह प्रश्न सहायक हो सकता है कि प्रभु यीशु एवं उसके द्वारा क्रूस पर पूर्ण किए गये उद्धार–कार्य के महत्व के बारे में कोई क्या सिखाता है (प0यूह0 2:22–23; 4:1–3)?

"अपने प्रति सावधान रहो, ऐसा न हो कि जो कुछ हमने कमाया उसे गवां दो, वरन् यह कि तुम पूरा प्रतिफल प्राप्त करो" (दू0यूह0 1:8)। "पूरा प्रतिफल" – वह आशिष एवं आनन्द जो सत्य का अनुसरण करने से प्राप्त होता है। जिन्होंने सत्य की शिक्षा एवं शिष्यता प्रदान की है, उन्हें भी सत्य में प्रगति करने वालों को देखकर सुखद अनुभव होता है। हम सब अपने बच्चों में ऐसा आत्मिक विकास देखना चाहते हैं जिससे कि वे ईश्वर–भक्त विश्वासी एवं जिम्मेदार व्यस्क बनें। यदि हमारे बच्चे किसी बुरे व्यक्ति के बहकावे में आकर अधर्म का रास्ता पकड़ लेते हैं, तो उससे हमारा हृदय टूट जाता है। ऐसी स्थिति में हमारे द्वारा दी गई सारी शिक्षा एवं सलाह बेकार दिखने लगती है। बहरहाल,

अन्य बातों से बढ़कर, हमारी प्रार्थना होती है कि भरमाने वालों से प्रभु उनकी रक्षा–सुरक्षा करते हुए सत्य–पथ पर आगे बढ़ते रहने में उनकी अगुवाई करता रहे (फिलि0 2:14–16)।

"जो कोई बहुत दूर भटक जाता है और मसीह की शिक्षा में बना नहीं रहता, उसके पास परमेश्वर नहीं; जो उसकी शिक्षा में स्थिर रहता है, उसके पास पिता और पुत्र दोनों ही हैं" (दू0यूह0 1:9)। सच्ची मसीहियत का केन्द्र–बिन्दु मसीह तथा उसके द्वारा पूर्ण किया गया कार्य है। वह सत्य परमेश्वर है, जिसके बलिदान के द्वारा ही हमारे उद्धार का उपाय हुआ है। आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक या परमेश्वर की दृष्टि से, हमारे पास जो कुछ है और हम जो कुछ हैं, यह सब प्रभु परमेश्वर की ही देन है। अब हमारा दैनिक ख्रीष्तीय आचरण ख्रीष्त के साथ हमारी आत्मिक एकता व पहचान पर आधारित है। इन सच्चाईयों से भटकना और मसीह द्वारा क्रूस पर सम्पन्न किए गये उद्धार–कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी चीज पर अथवा अपने धर्म–कर्म पर आशा–भरोसा रख कर ख्रीष्तीय जीवन जीने का (कर्म) प्रयास करना परमेश्वर प्रदत्त मार्ग से विचलित होना है (निर्ग0 17:5)।

"यदि कोई तुम्हारे पास आए और यही शिक्षा न दे, तो न उसे अपने घर में आने दो और न नमस्कार करो;

क्योंकि जो ऐसे मनुष्य को नमस्कार करता है, वह उसके कुकर्मों में सहभागी होता है" (दू0यूह0 1:10–11)। आजकल के झूठे शिक्षक जब हमारे घरों में प्रवेश करना चाहते हैं तो उन्हें अस्वीकार करना आसान नहीं होता, क्योंकि प्रायः ऐसे लोग बड़े मृदुल एवं व्यवहार–कुशल होते हैं। लेकिन यूहन्ना की दूसरी पत्री के इस पद की चेतावनी सुस्पष्ट है – "उसे अपने घर में न आने दो"। यूहन्ना की इस बात का मतलब यह नहीं है कि आप अपने अविश्वासी मित्रों, पड़ोसियों अथवा रिश्तेदारों को अपने घर में न आने दें। यह बात उन लोगों पर लागू होती है जो हमारे घर–परिवार अथवा कलीसियाई संगति–सभाओं में भ्रामक (झूठी) शिक्षा फैलाने आते हैं। आजकल सभी 'मसीहियों की एकता' के नाम पर तमाम गतिविधियां की जाती हैं; और कभी–कभी यूहन्ना की इन बातों पर स्थिर रहने के कारण हमें 'असहिष्णु, अनुदार अथवा विभाजक' कहकर बदनाम भी किया जा सकता है। एक कारण यह है कि अक्सर सत्य–शिक्षा की संरक्षा के महत्व के बजाय लोगों की महसूसियत पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। प्रमुख बात यह है कि अपसिद्धान्त या झूठी शिक्षा ज़हर है। इसीलिए विश्वासियों के मध्य इसके प्रचार–प्रसार को अवसर नहीं देना है। कलीसिया के अगुवों को ऐसे भ्रामक प्रचारकों को मौका नहीं देना चाहिए और इस प्रकार की झूठी शिक्षाओं से मंडली की रक्षा करनी चाहिए।

तीसरा यूहन्ना

9

"मुझ प्राचीन की ओर से प्रिय गयुस के नाम, जिस से मैं सत्य में प्रेम रखता हूं" (ती0यूह0 1:1)। प्रेरित यूहन्ना द्वारा लिखी गई यह तीसरी पत्री है। अपनी दूसरी पत्री के समान यूहन्ना यहां भी स्वयं को "प्राचीन" कहता है, जो कि उसकी उम्र अथवा कलीसियाई पदवी की ओर इशारा हो सकता है। यह पत्री "गयुस" नामक एक विश्वासी को भेजी गई थी। प्रेरितों के काम 20:4 में, रोमियों की पत्री के 16:23 में तथा कुरिन्थियों की पत्री के 1:14 में भी "गयुस" नाम आया है; लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि यूहन्ना की तीसरी पत्री का "गयुस" वही व्यक्ति है। ध्यान दें कि यूहन्ना ने यहां अपने एक मसीही भाई (गयुस) को आदर–मान एवं प्रेम के साथ प्रोत्साहित किया है। हमें भी अपने मसीही भाई–बहनों के प्रेम, विश्वास, भले कार्यों और सेवा का आदर–मान करते हुए, उन्हें उत्साहित करना चाहिए।

"हे प्रिय, मेरी प्रार्थना है कि जैसे तेरी आत्मा उन्नति कर रही है, वैसे ही तू सब बातों में उन्नति करे और स्वस्थ रहे" (ती0यूह0 1:2)। इस पद को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे गयुस का स्वास्थ्य एवं उसकी आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी जितनी कि आत्मिक स्थिति। किसी व्यक्ति की भौतिक परिस्थितियों को देखकर, झटपट उसके आत्मिक जीवन के बारे में टीका–टिप्पणी करना अच्छा नहीं

होता। कुछ लोग यह सोचते हैं कि यदि किसी विश्वासी का स्वास्थ्य अथवा उसकी आर्थिक दशा ठीक नहीं है, तो उसमें या तो विश्वास की कमी है या फिर उसमें किसी पाप के कारण परमेश्वर उसे दुःख दे रहा है। यद्यपि परमेश्वर कभी–कभी विश्वासियों के जीवन को बीमारी द्वारा अनुशासित करता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बीमार होने वाला प्रत्येक विश्वासी अपने जीवन में जानबूझ कर पाप कर रहा है। अक्सर प्रभु अपने विश्वासियों के जीवन में दुःख–बीमारी इसलिए भी आने देता है कि इसके द्वारा उनमें आत्मिक परिपक्वता बढ़े, उनका विश्वास और अधिक सुदृढ़ हो, परमेश्वर के प्रति उनका प्रेम और बढ़े या फिर वे उस पर और अधिक आश्रित रहना सीखें (रोमि0 5:3–5)। इस संदर्भ में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हम एक पतित एवं पाप से श्रापित संसार में जी रहे हैं, और हमारी यह भौतिक देह मृत्यु एवं रोग के अधीन है। हम सब की उम्र ढलती है, वृद्ध होते हैं, बीमार होते हैं और मरते हैं। इस दुनिया में रहते हुए वृद्धावस्था, बीमारी और मृत्यु का आना स्वाभाविक है (प0कुरि0 11:30; दु0कुरि0 12:7–10; प0तीमु0 5:23; दू0तीमु0 4:20)।

"क्योंकि मैं बड़ा आनन्दित हुआ जब भाईयों ने आकर तेरे सत्य की साक्षी दी, अर्थात् यह कि तू किस प्रकार सत्य में चल रहा है। मेरे लिए इस से बढ़कर और आनन्द की बात नहीं कि यह सुनूं कि मेरे बच्चे सत्य पर चल रहे हैं" (ती0यूह0 1:3–4)। ऐसा प्रतीत होता है कि यूहन्ना ने गयुस के साथ काफी समय बिताया था। हो सकता है कि गयुस को प्रभु के पास लाने में यूहन्ना का

योगदान रहा हो, क्योंकि उसे उसने अपना "बच्चा" कहकर सम्बोधित किया है। हो सकता है कि यूहन्ना द्वारा गयुस को शिष्यता–सेवा भी मिली हो, और आगे चलकर दोनों एक दूसरे से दूर हो गए। बाद में, सम्भवतः गयुस से सुपरिचित लोगों ने यूहन्ना से भेंट होने पर यह बताया कि गयुस प्रभु के विश्वास एवं सत्य में उन्नति कर रहा है। अतः यूहन्ना लिखता है कि उसे यह सुनकर बड़ा आनन्द हुआ कि 'उसका आत्मिक बालक' सत्य पर स्थिर है। शारीरिकता का जीवन व्यतीत करने वाले (विश्वासी) लोग दूसरे विश्वासियों की आत्मिक उन्नति से प्रसन्न होने के बजाय अपने स्वार्थ–केन्द्रित जीवन पर ही ध्यान लगाते हैं। लेकिन **आत्मा** की अधीनता में जीवन व्यतीत करने वाले विश्वासीजन शाश्वत् महत्व की तथा ख्रीष्त–केन्द्रित प्रत्येक बात (उन्नति) से हर्षित होते हैं (दू0कुरि0 4:5)।

"हे प्रिय, तू भाईयों के लिए जो कुछ कर रहा है उसे विश्वासयोग्यता से पूरा कर रहा है, और विशेषकर जब वे परदेशी हैं; उन्होंने कलीसिया के सामने तेरी प्रेम की साक्षी दी है, और अच्छा होगा यदि तू उन्हें इस प्रकार विदा करे जैसे परमेश्वर को सोहता है। क्योंकि वे उस नाम के लिए निकले हैं और ग़ैरयहूदियों से कुछ नहीं लेते। इसलिए हम ऐसे लोगों को संभालें, जिससे कि हम भी सत्य में सहकर्मी हों" (ती0यूह0 1:5–8)। यहां यूहन्ना द्वारा गयुस की सराहना की गई है, क्योंकि गयुस ने उन शिक्षकों की सहायता की थी जो विभिन्न कलीसियाओं में जाकर परमेश्वर का वचन सिखा रहे थे। यहां इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि स्वयं गयुस वचन का शिक्षक

था, लेकिन यह सुस्पष्ट है कि वह सत्य (शिक्षा) के अनुसार जीवन बिता रहा था और उनकी सहायता कर रहा था जो सत्य–शिक्षा देने में लगे हुए थे। सत्य वचन के ये शिक्षक उन ग़ैरयहूदियों और अविश्वासियों से कुछ नहीं ले रहे थे, जिनके मध्य वे शिक्षा दे रहे थे। अतः गयुस द्वारा ऐसे लोगों की सहायता करना उनकी सेवा में सहभागी होने के समान था। यह उन विश्वासियों के लिए एक उत्साहवर्धक उदाहरण है जो यह सोचते हैं कि वचन की सार्वजनिक शिक्षा या सुसमाचार प्रचार में भाग नहीं लेने के कारण, मंडली में उनका कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं। स्मरण रहे कि परमेश्वर की प्रत्येक संतान को मसीह की देह (कलीसिया) में एक विशिष्ट सेवा–कार्य हेतु एक विशिष्ट वरदान (योग्यता) दिया गया है, और प्रभु में बने रहने पर इसी सेवा–कार्य के लिए विश्वासीजन को प्रभु की ओर से इच्छा एवं सामर्थ्य मिलती है (रोमि0 12:3–8; प0कुरि0 12:4–7,12–26)।

उपर्युक्त पदों से यह ज्ञात होता है कि पवित्र वचन के वे शिक्षक "उस नाम के लिए" दूर–दूर तक कठिन यात्रा कर रहे थे (प्रेरि0 5:41)। मसीह यीशु ने पिता परमेश्वर के प्रति अपनी आज्ञाकारिता में क्रूस पर पापियों के बदले मृत्यु–दंड सहा। पुनः जी उठे मसीह यीशु को पिता परमेश्वर ने सर्वोच्च पद प्रदान करके एक ऐसा महान **नाम** दिया है "जो सब नामों में श्रेष्ठ" है (फिलि0 2:9–11)। सातवें पद में जिन शिक्षकों का उल्लेख है उन्होंने दूसरों को पवित्र वचन की शिक्षा दी ताकि लोग प्रभु यीशु मसीह का ज्ञान पाकर उसके विश्वास, प्रेम व आज्ञाकारिता में

आएं। ये बाइबॅल शिक्षक अविश्वासी लोगों के दान पर नहीं, बल्कि प्रभु पर आश्रित थे। इस प्रकार, गयुस जैसे प्रभु के लोगों को, ऐसे शिक्षकों की दैनिक आवश्यकताओं में सहायता प्रदान करने का सुअवसर मिला। हो सकता है कि परमेश्वर के वचन की शिक्षा में अपना समय देने वाले लोगों को सहयोग देने में हमारी भी यही भूमिका हो। प्रभु की इच्छा यह है कि हम आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करें। आत्मा के अधीन जीने पर परमेश्वर की इच्छा हमारी इच्छा हो जाती है। तब हम स्वयं को परमेश्वर की सेवा में सौंपने को तत्पर होते हैं – चाहे स्वयं सेवा–कार्य में लगकर या सेवा–कार्य के लिए आर्थिक व भौतिक सहायता देकर अथवा सेवा–कार्य में लगे लोगों के लिए प्रार्थना करने के द्वारा (प्रेरि0 13:1–3)।

"मैंने कलीसिया को कुछ लिखा था, परन्तु दियुत्रिफेस जो उनमें प्रमुख बनने की लालसा रखता है, हमारी नहीं मानता" (ती0यूह0 1:9)। ऐसा लगता है जैसे कि दियुत्रिफेस उस कलीसिया का एक अगुवा था, जिसका गयुस एक सदस्य था। दीन एवं नम्र आत्मिक अगुवे के समान विश्वासयोग्यता के साथ कलीसिया के लोगों की सेवा करने के बजाय दियुत्रिफेस अपने आप को बड़ा बनाने तथा मंडली के लोगों पर तानाशाही करने में लगा था। प्रेरित यूहन्ना की बात से यह भी इशारा मिलता है कि जो लोग उसके विचार से असहमत होते थे, उन्हें वह तिरस्कृत (अस्वीकार) कर देता था। शायद उसने यूहन्ना को भी अस्वीकार किया था। इस प्रकार दियुत्रिफेस की मनोवृत्ति **नया नियम** में वर्णित कलीसियाई अगुवों के आचरण के विपरीत थी (प0पत0 5:1–4)।

"इसलिए यदि मैं आऊं, तो उसके उन कार्यों की जो वह कहता है, याद दिलाऊंगा। वह अनुचित रूप से हमारे विरुद्ध बुरी–बुरी बातें कहकर दोष लगाता है; और इतने से ही संतुष्ट नहीं, वह न तो स्वयं भाईयों को ग्रहण करता वरन् उन्हें जो ग्रहण करना चाहते हैं मना करता और कलीसिया से निकाल देता है" (ती0यूह0 1:10)। दियुत्रिफेस जो कुछ कर रहा था, वह सिर्फ यूहन्ना के ही अहित में नहीं था, बल्कि पूरी मंडली को प्रभावित कर रहा था। अतः यूहन्ना उसे सार्वजनिक तौर पर पूरी मंडली के समक्ष समझाने पर विचार कर रहा था। सबके समक्ष लोगों को उनकी बुराईयों के बारे में समझाना व चेतावनी देना कठिन होता है। परन्तु जब समस्या बढ़ जाती है और पूरी मंडली को प्रभावित करती है, तब ऐसा करना आवश्यक हो जाता है (प0तीमु0 5:19–21)। दियुत्रिफेस ने उन विश्वासियों को अस्वीकृत एवं बहिष्कृत कर दिया था जो उसके विचारों से असहमत थे। इतना ही नहीं, उसने कुछ लोगों के कलीसिया में आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। यह स्पष्ट नहीं है कि इस मंडली में एक से अधिक अगुवे (प्राचीन) थे या नहीं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि दियुत्रिफेस यह सब कुछ अपनी मनमर्जी के अनुसार कर रहा था। ऐसा अधिकार एक ही अगुवे को नहीं दिया जाना चाहिए, चाहे वह एक एल्डर (प्राचीन) ही क्यों न हो। यह जिम्मेदारी अगुवों के समूह में निहित होनी चाहिए और इसे कलीसियाई संगति–सहभागिता में निभाना चाहिए (प0कुरि0 5:4–5)।

"प्रिय, बुराई का नहीं परन्तु भलाई का अनुकरण करना। जो भलाई करता है वह परमेश्वर से है; पर जो बुराई करता है उसने परमेश्वर को नहीं देखा" (ती0यूह0 1:11)। संभवतः गयुस जिस मंडली का सदस्य था, उसमें ऐसे युवा विश्वासी भी थे जो अपने विश्वास में नए और कमजोर थे। हो सकता है कि दियुत्रिफेस एक जोशीला, कृत–संकल्प तथा दूसरों के समक्ष सम्माननीय लगने वाला व्यक्ति था। हो सकता है कि उस मंडली के तमाम लोग उसे एक बड़ा अगुवा मान बैठे थे। आज की दुनिया में तथा मसीही मंडलियों में भी ऐसे लोग पाए जाते हैं जिन लोगों को दुनिया के लोग महान लीडर कहते हैं; ये लोग बाइबॅल में वर्णित दासवत् सेवक की परिभाषा से भिन्न होते हैं (मर0 10:42–45)। आज की अनेक कलीसियाओं के अगुवे ईश्वर–भक्त के बजाय दुनियावी लीडर (नेता) की तरह कार्य–व्यवहार करते हैं। अतः प्रेरित यूहन्ना ने गयुस को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि दूसरे (दियुत्रिफेस जैसे) लोगों के बुरे कार्य–व्यवहार की नकल करने से दूर रहे। इसके बजाय भलाई एवं सही काम के पक्ष में होना चाहिए (प0तीमु0 4:12; प0कुरि0 4:14–17)। परमेश्वर के विश्वासियों की इच्छा, भावना एवं कार्य व्यवहार उनके जीवन–स्रोत की ओर इशारा करते हैं। क्या हम आत्मा के अनुसार जीवन जी रहे हैं या शारीरिकता के अनुसार? शारीरिकता में होने पर हमारे जीवन से शरीर के काम प्रकट होंगे, और आत्मा में होने पर आत्मा के फल प्रकट होंगे (गला0 5:19–23)।

"दिमेत्रियुस के विषय में सब ने, यहां तक कि सत्य ने भी, अच्छी साक्षी दी है; और हम भी साक्षी देते हैं, और तू जानता है कि हमारी साक्षी सच्ची है" (ती0यूह0 1:12)। दिमेत्रियुस के बारे में बाइबॅल में अन्यत्र कहीं ज़िक्र नहीं आता। वह एक ऐसा विश्वासी था जो उस स्थान की मंडली के लोगों से भेंट–मुलाकात करने के लिए जाने वाला था, जहां गयुस रहता था। संभवतः प्रेरित यूहन्ना यह जानता था कि दिमेत्रियुस को भी दियुत्रिफेस ग्रहण नहीं करेगा। इसलिए उसने गयुस को यह पत्र लिखा और दिमेत्रियुस के हाथ उसके पास भेजा। दिमेत्रियुस को जानने वाले लोग उसके बारे में अच्छी साक्षी दिए थे। इतना ही नहीं, दिमेत्रियुस का सत्य–शिक्षा पर विश्वास उसके मसीही आचरण का एक ठोस प्रमाण था। इसके साथ ही साथ, यूहन्ना और उसके साथियों ने भी दिमेत्रियुस के ईश्वरपरायण जीवन की साक्षी दी थी। हमारे इर्द–गिर्द के लोग हमारे बारे में क्या कहते हैं? क्या हम अपने शारीरिकतापूर्ण कार्य–व्यवहार के लिए जाने जाते हैं या आत्मा के फलों के लिए?

✞ ✞ ✞

इस श्रृंखला की पुस्तकों का निम्नलिखित क्रम में अध्ययन ज्यादा लाभप्रद होगा :

1. परमेश्वर–कृत उद्धार
2. प्रेरितों के कार्य
3. वह मुझमें और मैं उसमें
4. रोमियों
5. इफिसियों
6. पहला कुरिन्थियों
7. पहला तीमुथियुस
8. तीतुस
9. पहला और दूसरा थिस्सलुनीकियों
10. प्रकाशितवाक्य
11. गलातियों
12. कुलुस्सियों
13. दूसरा कुरिन्थियों
14. फिलिप्पियों
15. फिलेमोन
16. दूसरा तीमुथियुस
17. पहला और दूसरा पतरस
18. यूहन्ना की पत्रियां

इन पुस्तकों की और प्रतियां प्राप्त करने हेतु इन फोन नम्बरों से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं :